स्वामी हरिदास जी

जीवनी और वाणी

— तथा —

अष्टाचार्यों एवं भक्त-कवियों
की
जीवनी और रचनाएँ

रचयिता :
प्रभुदयाल मीतल

प्रकाशक :
साहित्य संस्थान, मथुरा ।

प्रथम संस्करण
दीपावली, सं० २०१८ वि०

मूल्य ३) तीन रुपया ।

392115
789-H
49

मुद्रक :
त्रिलोकीनाथ मीतल, भारत प्रिंटर्स, डेम्पियर पार्क, मथुरा ।

प्राक्कथन

स्वामी हरिदास जी ब्रज की महान् विभूति थे। मध्य कालीन उपासना, भक्ति, संगीत और साहित्य के क्षेत्र में उनका नाम अमर है। वे ब्रज की राधा-कृष्णोपासना के एक विशिष्ट मत के प्रवर्त्तक और संगीत के विख्यात आचार्य थे। सांस्कृतिक जगत् में वे धर्माचार्य की अपेक्षा संगीताचार्य के रूप में अधिक प्रसिद्ध हैं। तानसेन जैसा सर्व-मान्य गायक उनका शिष्य कहा जाता है। उनकी जीवनचर्या के अध्ययन से ज्ञात होता है कि संगीत उनका लक्ष नहीं था; वह तो उनकी उपासना और भक्ति का एक साधन मात्र था। फिर भी संगीत के क्षेत्र में उनकी जो विशिष्ट देन है, उसे कम नहीं समझा जा सकता। इसी प्रकार उनकी वाणी परिमाण में स्वल्प होते हुए भी भावना की दृष्टि से अपना पृथक् साहित्यिक महत्व रखती है।

हिंदी साहित्य में अब तक कोई ऐसी पुस्तक नहीं थी, जिससे स्वामी जी की जीवनी, वाणी और संप्रदाय के संबंध में समुचित प्रकाश पड़ सके। प्रस्तुत पुस्तक उसी कमी की पूर्ति का एक लघु प्रयास है। आशा है, भविष्य में अधिकारी विद्वानों द्वारा इसकी वृहत् और सर्वांग-सुंदर रूप में पूर्ति हो सकेगी।

स्वामी जी की जीवनी से संबंधित कई बातें विवादग्रस्त हैं। हमारा उद्देश्य किसी विवाद में न पड़ कर जीवनी के सर्वमान्य तथ्यों को प्रस्तुत करना है। स्वामी जी की वाणी 'सिद्धांत के पद' और 'केलिमाल' के नाम से उपलब्ध है। इसके यथार्थ मर्म से हरिदासी विद्वानों के अतिरिक्त अन्य व्यक्ति अभी तक प्राय: अपरिचित ही हैं। इसे हम सभी श्रद्धालु पाठकों के लिए सुलभ करना चाहते हैं। इसके साथ ही स्वामी जी की परंपरा के आचार्यों और उनके अनुगामी भक्त-कवियों की जीवनी और रचनाओं का संक्षिप्त परिचय देना भी आवश्यक समझा गया है।

स्वामी हरिदास जी की भाषा में एक विचित्र प्रकार का 'बाँकापन' है और उनके भावों में असाधारण रहस्यात्मकता है। इनके कारण उनकी वाणी जहाँ अधिकारी विद्वानों को महत्वपूर्ण ज्ञात होती है, वहाँ साधारण पाठकों को विशिष्टता रहित एक साधारण सी रचना जान पड़ती है। जब हिंदी साहित्य के सर्वमान्य विद्वान तक इसके संबंध में यथार्थ मत नहीं बना सके, तब साधारण पाठकों से और क्या आशा की जा सकती है ! इसके प्रतिकार के लिए यह आवश्यक था कि अधिकारी विद्वान स्वामी जी की वाणी को समुचित टीका-टिप्पणी के साथ प्रकाशित करते; किंतु इसके विरुद्ध वे इसे सर्व साधारण से छिपाने के लिए अप्रकाशित रखना ही श्रेयष्कर समझते हैं ! आज के वैज्ञानिक युग में कोई वस्तु छिप नहीं सकती—अब तो अंतरिक्ष तक का रहस्योद्घाटन होने लगा है ! ऐसी दशा में स्वामी जी की वाणी को छिपाने की चेष्टा व्यर्थ है। इस प्रकार के विफल प्रयास का यह दुष्परिणाम होता है कि अनधिकारी व्यक्ति इसे विकृत रूप में प्रस्तुत करते हैं, जिससे श्रद्धालु जनों को भी अरुचि हो जाती है।

हमारा विचार बहुत दिनों से स्वामी जी की वाणी को सटीक रूप में उपस्थित करने का रहा है। इसके लिए हमने हरिदासी संप्रदाय के विद्वानों से परामर्श किया और उसके मर्म को समझने की चेष्टा की। वे लोग सिद्धांत के पदों को तो सटीक रूप में प्रस्तुत करने से कोई हानि नहीं मानते हैं; किंतु केलिमाल की टीका प्रकाशित करना अभी उचित नहीं समझते ! उनके मत का आदर करने के लिए इस समय हम सिद्धांत के पदों को टीका सहित और केलिमाल को मूल रूप में ही प्रस्तुत कर रहे हैं। अभी तक केलिमाल की जो हस्त लिखित और मुद्रित प्रतियाँ मिलती हैं, उनके पाठ में बड़ी गड़बड़ी है। हमने इसे यथा संभव शुद्ध रूप में प्रकाशित करने की चेष्टा की है। सिद्धांत के पदों की प्रस्तुत टीका से ही पाठकों को ज्ञात हो जावेगा कि स्वामी जी

की वाणी के मर्म को समुचित टीका के बिना समझना कितना कठिन है। हमें आशा है, आगामी संस्करण में हम सिद्धांत के पदों की भाँति केलिमाल को भी टीका-टिप्पणी के साथ उपस्थित कर सकेंगे।

इस पुस्तक में प्रकाशित वाणी के पाठ-संशोधन में हमने बाबा विश्वेश्वर शरण जी द्वारा संपादित 'स्वामी हरिदास रस-सागर' से अधिक सहायता ली है और इसमें दिये हुए अधिकांश चित्र 'संगीत' कर्यालय, हाथरस के ब्लाकों से छापे गये हैं। इस सहयोग के लिए मैं उक्त बाबा जी तथा 'संगीत'-कार्यालय के संचालक श्री प्रभुलाल जी गर्ग का आभारी हूँ। अकबर-हरिदास भेंट का ब्लाक गो० छबीलेबल्लभ जी से और ठाकुर श्री बिहारी जी का चित्र श्री राधामोहनदास से मुद्रणार्थ प्राप्त हुए हैं। इनके लिए मैं उन्हें धन्यवाद देता हूँ।

मीतल निवास,
डैम्पियर पार्क, मथुरा
शरद पूर्णिमा, सं० २०१८

—प्रभुदयाल मीतल

संशोधन की सूचना—'केलिमाल' की एक टीका नागरीदास के नाम से उपलब्ध होती है। इसके टीकाकार इस पुस्तक में श्री बिहारिनदास जी के शिष्य 'बड़े नागरीदास' लिखे गये हैं। अनुसंधान से ज्ञात हुआ है कि इसके टीकाकार श्री पीतांबरदास जी के शिष्य हरिदासी संप्रदाय के द्वितीय नागरीदास थे।

सहायक ग्रंथ

	ग्रंथ	ग्रंथकार
१.	स्वामी हरिदास रस-सागर :	श्री विश्वेश्वर शरण
२.	अष्टाचार्यों की वाणी :	हस्तलिखित
३.	श्री केलिमाल (स्वामी हरिदास जी)	श्री छबीलेबल्लभ गो०
४.	अष्टादश सिद्धांत के पद (,,) :	श्री अमोलकराम शास्त्री
५.	,, ,, ,, :	श्री ललिताप्रसाद पाठक
६.	सिद्धांत-रत्नाकर ... :	श्री विश्वेश्वर शरण
७.	निज मत सिद्धांत (चारों खंड) :	श्री किशोरदास जी
८.	गुरु प्रणालिका, आचार्योत्सव सूचना और ललित प्रकाश :	श्री सहचरिशरण जी
९.	श्री भगवतरसिक की वाणी :	श्री भगवतरसिक जी
१०.	श्री निंबार्क माधुरी ... :	श्री बिहारी शरण
११.	श्री हरिदास वंशानुचरित :	श्री नवनीत चतुर्वेदी
१२.	श्री हरिदास अभिनंदन ग्रंथ :	श्री छबीलेबल्लभ गो०
१३.	श्री हरिदास-अंक (संगीत, हाथरस)	श्री लक्ष्मीनारायण गर्ग
१४.	नाभा जी कृत 'भक्तमाल' :	श्री रूपकला जी
१५.	ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली :	श्री राधाकृष्णदास
१६.	पद-प्रसंग-माला (नागर समुच्चय) :	श्री नागरीदास जी
१७.	संगीत राग कल्पद्रुम (भाग १, २) :	श्री कृष्णानंद व्यास
१८.	कीर्तन-संग्रह (भाग १, २, ३) :	श्री लल्लूभाई देसाई
१९.	भक्त-कवि व्यास जी ... :	श्री वासुदेव गोस्वामी
२०.	संगीत-सम्राट तानसेन ... :	श्री प्रभुदयाल मीतल
२१.	संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ :	श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी
२२.	मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी) :	श्री हरिहरनिवास द्विवेदी
२३.	मथुरा मेमायर्स (संस्करण २, ३) :	श्री एफ. एस. ग्राउस

इनके अतिरिक्त मिश्रबंधु विनोद, हिंदी साहित्य के विविध इतिहास, तथा सामयिक पत्र-पत्रिकाएँ।

विषय सूची

प्रथम परिच्छेद

स्वामी हरिदास की जीवनी

द्वितीय परिच्छेद

स्वामी हरिदास की वाणी

तृतीय परिच्छेद

हरिदासी अष्टाचार्य और उनकी वाणी

चतुर्थ परिच्छेद

हरिदासी भक्त-कवि और उनकी वाणी

परिशिष्ट

●

चित्र सूची

स्वामी हरिदास जी

प्रथम परिच्छेद

स्वामी हरिदास की जीवनी

आरंभिक कथन—

विक्रम की १६ वीं शती ब्रजमंडल के पुनरुत्थान का महत्त्वपूर्ण काल है। उस समय ब्रज में ऐसे अनेक महापुरुष हुए, जिनकी अपूर्व देन ने वहाँ के धर्म, साहित्य और कला-कौशल को समुन्नत रूप प्रदान किया था। इसका बहुत व्यापक प्रभाव हुआ। ब्रज के उस नव जागरण की गूंज समस्त देश में व्याप्त हो गई। भारत के विभिन्न प्रदेशों के निवासी ब्रज संस्कृति से प्रेरणा प्राप्त कर अपने जीवन को समुन्नत और सुसंस्कृत बनाने लगे। ब्रज के जिन महात्माओं के कारण वह युगांतर उपस्थित हुआ था, उनमें स्वामी हरिदास का नाम उल्लेखनीय है।

स्वामी हरिदास जी वृंदाबन के महान् संत, रसिक भक्त, संगीतज्ञ-शिरोमणि और सुविख्यात धर्माचार्य थे। उनकी जीवनी से संबंधित अनेक किंवदंतियाँ और अनुश्रुतियाँ प्रचलित हैं; जिनसे उनके चमत्कारपूर्ण व्यक्तित्व और अलौकिक प्रभाव का परिचय तो मिलता है, किंतु उनके जीवन-वृत्त की विश्वसनीय बातों का बोध नहीं होता है। वैसे तो प्रायः सभी प्राचीन और मध्यकालीन महापुरुषों के जीवन-वृत्त अस्पष्ट होने से विवादग्रस्त हैं; तथापि स्वामी हरिदास जी की जीवनी विषयक जैसी उलझन है, वैसी बहुत कम महात्माओं के संबंध में

मिलती है। इसका कारण उपलब्ध सामग्री विषयक शुद्ध साहित्यिक तथा ऐतिहासिक मतभेद ही नहीं, वरन् सांप्रदायिक विवाद भी है; जिसने कुछ समय से सामूहिक विद्वेष का सा रूप धारण कर लिया है। इसका यह दुष्परिणाम हुआ है कि उस जगद्वन्द्य महात्मा का महान् व्यक्तित्व व्यर्थ के वाक्-जंजाल में उलझ गया है!

इस समय स्वामी हरिदास जी के जन्म-काल, जन्म-स्थान, कुल, जाति, गुरु और संप्रदाय के संबंध में स्पष्टतया दो मत हैं। दोनों के समर्थन में जो परस्पर विरोधी तर्क उपस्थित किये गये हैं, उनके कारण तत्त्वान्वेषी निष्पक्ष विचारकों के लिए भी किसी निर्भ्रांत मत पर पहुँचना कठिन हो गया है। यही कारण है, मिश्रबंधु विनोद से लेकर अब तक लिखे हुए हिंदी साहित्य के प्रायः सभी इतिहास ग्रंथों में स्वामी हरिदास जी का अत्यंत अपूर्ण और त्रुटिपूर्ण जीवन-वृत्त मिलता है। उनकी रचनाओं के संबंध में भी उनमें यथार्थ कथन नहीं किया गया है।

इतिहास की त्रुटियाँ—

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में समान रूप से यह लिखा मिलता है कि स्वामी हरिदास जी निम्बार्क संप्रदाय के अंतर्गत टट्टी स्थान के संस्थापक थे[1]। टट्टी स्थान की स्थापना स्वामी जी से प्रायः दो शताब्दी पश्चात् उनकी विरक्त शिष्य परंपरा के आचार्य श्री ललितकिशोरी दास ने की थी। उनका

---

१. मिश्रबंधु विनोद, पृ० ३०२

शुक्ल जी कृत हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १६१

हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५६०

देहावसान सं० १८२३ में हुआ था। ऐसी दशा में स्वामी हरिदास जी को टट्टी स्थान का संस्थापक बतलाना वास्तविकता के विपरीत है। फिर स्वामी जी की उपासना विधि, भक्ति भावना और उनके रस सिद्धांत में इतनी विलक्षणता है कि उन्हें किसी दार्शनिक संप्रदाय के सम्बद्ध करना भी वस्तु स्थिति के अनुकूल ज्ञात नहीं होता है।

मिश्रबंधुओं और शुक्लजी दोनों के इतिहास ग्रंथों में यह हास्यास्पद कथन मिलता है कि स्वामी जी पहिले वृंदावन में रहे थे, किंतु बाद में वे निधुबन में चले गये थे[1]। गोया निधुबन भी मधुबन-कामबन की तरह वृंदाबन से पृथक् कोई स्थान है; जब कि वह वृंदाबन का ही एक विशिष्ट स्थल है। डा० रामकुमार वर्मा ने लिखा है, हरिदासी संप्रदाय के सिद्धांत चैतन्य संप्रदाय से बहुत मिलते हैं[2]। यह कथन भी सरासर निराधार है।

हिंदी साहित्य के इतिहास ग्रंथों में स्वामी जी की रचनाओं को 'ऊबड़-खाबड़' लिखा गया है तथा उनमें मधुरता, कोमलता और शब्द-चातुर्य की कमी बतलाई गई है[3]। संगीत और साहित्य के कतिपय विद्वान स्वामी हरिदास तथा हरिदास डागुर को एक ही व्यक्ति मानते हैं। इसीलिए कुछ संगीत ग्रंथों में स्वामी हरिदास जी की रचनाओं में हरिदास डागुर की

---

१. मिश्रबंधु विनोद, पृ० ३०३
   शुक्लजी कृत हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १६१
२. हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ६०७
३. शुक्लजी कृत हिंदी साहित्य का इतिहास, पृ० १६१
   हिंदी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ० ५९०

रचनाएँ भी मिला दी गई हैं[1]। वास्तविकता यह है, न तो स्वामी जी की रचनाओं में मधुरता, कोमलता और शब्द-चातुर्य की सर्वथा कमी है, और न स्वामी हरिदास तथा हरिदास डागुर एक ही व्यक्ति थे। हम इस संबंध में आगे विस्तारपूर्वक लिखेंगे।

दो मत—

स्वामी हरिदास जी के अनुगामियों की परंपरा में एक वर्ग विरक्त संतों का है और दूसरा गृहस्थ गोस्वामियों का। गोस्वामी वर्ग अपने को स्वामी जी का वंशज बतलाते हैं। उनका यह दावा विरक्त शिष्य-परंपरा के संतों को स्वीकार नहीं है। यही दोनों वर्गों के पारस्परिक विवाद का मूल कारण है। इस विवाद के फल स्वरूप स्वामी जी के जीवन-वृत्तांत से संबंधित स्पष्टतया दो मत बन गये हैं, जिनका सामंजस्य करना एक बड़ी समस्या बनी हुई है।

विरक्त शिष्यों के मत का आधार अब से प्रायः दो शताब्दी पूर्व निर्मित 'निज मत सिद्धांत' नामक ग्रंथ है, जिसके रचयिता श्री किशोरदास नामक एक विरक्त संत थे। इसी ग्रंथ के आधार पर श्री सहचरिशरण कृत 'गुरु प्रणालिका', 'आचार्योत्सव सूचना', और 'ललित प्रकाश' में भी विरक्त शिष्यों की मान्यता के अनुकूल कथन किये गये हैं।

गोस्वामी वर्ग की मान्यता का प्रमुख आधार 'मिराते सिकंदरी व मिराते अकबरी' नामक एक प्राचीन फारसी ग्रंथ कहा जाता है। इसके अतिरिक्त विविध भक्तमालादि अन्य आधार ग्रंथ भी हैं; किंतु वे परवर्ती काल के हैं।

---

१. संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ, पृ० ५१–५६

दोनों मतों में मान्य स्वामी जी के जीवन-वृत्तांत का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

	विरक्त शिष्य परंपरा के अनुसार	गृहस्थ गोस्वामी परंपरा के अनुसार
१. जन्म-काल	सं० १५३७ भाद्रपद शु० ८, बुधवार	सं० १५६९ पौष शु० १३, शुक्रवार
२. जन्म-स्थान	राजपुर (वृंदाबन)	हरिदासपुर (अलीगढ़)
३. जाति	सनाढ्य ब्राह्मण	सारस्वत ब्राह्मण
४. माता	चित्रादेवी	गंगादेवी
५. पिता	गंगाधर जी (सनाढ्य)	आशुधीरजी (सारस्वत)
६. गुरु	आशुधीर जी (सारस्वत)	आशुधीरजी (सारस्वत)
७. संप्रदाय	निंबार्क	विष्णुस्वामी
८. दीक्षा तिथि	...	भाद्रपद शु० ८
९. वृंदाबन-आगमन	सं० १५६२ (२५ वर्ष की आयु में)	सं० १५९४ (२५ वर्ष की आयु में)
१०. बिहारी जी की प्राकट्य-तिथि	मार्गशीर्ष शु० ५ (सं० १५६७)	मार्गशीर्ष शु० ५ (सं० १६०० के बाद)
११. देहावसान-काल	सं० १६३२ आश्विन शु० १५ (९५ वर्ष की आयु में)	सं० १६६४ आश्विन शु० १५ (९५ वर्ष की आयु में)

पूर्वोक्त विवरण से ज्ञात होता है कि श्री आशुधीर जी से स्वामी हरिदास जी का घनिष्ट संबंध दोनों ही मतों में स्वीकृत है। विरक्त शिष्य परंपरा के अनुसार जहाँ श्री आशुधीर जी स्वामी जी के गुरु माने जाते हैं, वहाँ गोस्वामियों के मतानुसार वे स्वामी जी के पिता और गुरु दोनों ही थे। विरक्त संतों में भी गुरु को पिता ही समझा जाता है। आशुधीर जी का सारस्वत ब्राह्मण होना दोनों ही मतों में मान्य है। भाद्रपद शु० ८ (राधाष्टमी) जहाँ विरक्त शिष्यों के मतानुसार स्वामी जी की जन्म-तिथि है, वहाँ गोस्वामियों के मतानुसार दीक्षा-प्राप्ति की तिथि। वैष्णव संप्रदायों में दीक्षा-प्राप्ति की तिथि ही एक प्रकार से जन्म-तिथि भी मानी जाती है; क्यों कि उसी दिन संप्रदाय में शिष्य का आविर्भाव होता है। यही कारण है, दोनों ही परंपराओं में स्वामी जी का जन्मोत्सव भाद्रपद शु० ८ को ही मनाया जाता है। इससे स्पष्ट है कि स्वामी जी की जन्म-तिथि और दीक्षा-तिथि तथा उनके पिता और गुरु विषयक विवाद में उतनी जटिलता नहीं है; जितनी उनके जन्म-काल और जन्म-स्थान तथा उनकी जाति और संप्रदाय के संबंध में है।

दोनों मतों के आधार—

स्वामी हरिदास जी मुगल सम्राट अकबर के काल में विद्यमान थे। उन्हें अकबरी दरबार के विख्यात गायक संगीत-सम्राट तानसेन का संगीत-गुरु कहा जाता है। यह किंवदंती अति प्रसिद्ध है कि स्वामीजी का दिव्य संगीत सुनने की उत्सुकता में सम्राट अकबर स्वयं तानसेन के साथ निधुबन गये थे। अकबर कालीन अनेक विख्यात पुरुषों के विवरण 'आईन-ए-अकबरी' और 'अकबरनामा' जैसे तत्कालीन ग्रंथों में मिलते हैं।

उनमें तानसेन के संबंध में भी विस्तार पूर्वक लिखा गया है; किंतु उसके तथाकथित संगीत-गुरु और सम्राट अकबर को अपने अद्भुत संगीत से चकित कर देने वाले स्वामी हरिदास जी से संबंधित उनमें कोई उल्लेख नहीं है।

गोस्वामियों की मान्यता के समर्थन में 'मिराते सिकंदरी व मिराते अकबरी' नामक एक प्राचीन फारसी ग्रंथ का नामोल्लेख किया जाता है। श्री सुदर्शनसिंह 'चक्र' ने इस संबंध में लिखा है—

"मिराते सिकंदरी व मिराते अकबरी' इस ग्रंथ का कुछ भाग वि० सं० १५२६ में लिखा गया था और शेष भाग सम्राट अकबर के समय में पूरा हुआ था। इसमें विस्तार से तत्कालीन इतिहास का वर्णन हुआ है। यह कई जिल्दों में है। इसमें श्री हरिदास जी तथा उनके जन्म-संवत्, जन्म-स्थान, जाति, पिता आदि का वर्णन ग्रंथ की छटवीं जिल्द में पाया जाता है। कोई कारण नहीं कि इस ग्रंथ को प्रामाणिक न माना जाय। इस ग्रंथ के अनुसार स्वामी जी का जन्म पौष शुक्ला १३ भृगुवार सं० १५६६ में हुआ। ऐतिहासिक घटनाओं का विवेचन करने से भी यह काल ठीक जान पड़ता है[1]।"

निश्चय ही यह बहुत बड़ा प्रमाण है, जो गोस्वामी वर्ग की मान्यता को अकाट्य सिद्ध करता है। किंतु इसमें यह कठिनाई है कि उक्त 'मिराते सिकंदरी व मिराते अकबरी' ग्रंथ इस समय कदाचित मिलता नहीं है। श्री 'चक्र' जी ने अपना कथन उक्त ग्रंथ को स्वयं देख कर लिखा है, अथवा किसी से सुन कर, यह भी निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। गोस्वामियों की मान्यता का समर्थन करने वाले जितने

---

१. श्री केलिमाल में प्रकाशित 'स्वामी जी का जीवन चरित्र', पृ० २०

सज्जन हमें मिले हैं, उनमें से किसी ने उक्त ग्रंथ को नहीं देखा है। फजलुल्ला लुतफुल्ला फरीदी कृत 'मिराते सिकंदरी' का अंगरेजी अनुवाद उपलब्ध है, जो एक ही जिल्द में प्रकाशित हुआ है। इसमें स्वामी हरिदास के विषय में कुछ भी नहीं लिखा गया है। इस संबंध में हम श्री चिंतामणि शुक्ल के इस अनुमान को असंगत नहीं समझते कि "उक्त अंगरेजी ग्रंथ का नाम 'मिराते सिकंदरी' है, जब कि मूल ग्रंथ का पूरा नाम 'मिराते सिकंदरी व मिराते अकबरी' है, अतः यह संभावना है कि मूल ग्रंथ के केवल 'मिराते सिकंदरी' अंश का यह अनुवाद हो[१]।"

यदि 'मिराते सिकंदरी व मिराते अकबरी' ग्रंथ की वास्तव में अनेक जिल्दें हैं और उसकी छटवीं जिल्द में स्वामी हरिदास जी का वृत्तांत उसी प्रकार है, जिस प्रकार श्री 'चक्र' जी ने लिखा है; तब इस संबंध का विवाद तत्काल समाप्त हो जाना चाहिए और गोस्वामी वर्ग की मान्यता को प्रामाणिक रूप में स्वीकार कर लेना चाहिए। यदि उस फारसी ग्रंथ का उल्लेख कल्पना मात्र है, तो गोस्वामियों की मान्यता का प्रमुख आधार ही ढह जाता है।

जहाँ तक ऐतिहासिक घटनाओं के विवेचन से स्वामी जी विषयक संवतों के ठीक होने की बात है; गोस्वामियों द्वारा मान्य जन्म-संवत् (१५६९) और वृंदाबन-आगमन संवत् (१५९४) विरक्त शिष्य परंपरा द्वारा मान्य जन्म-संवत् (१५३७) और वृंदावन-आगमन संवत (१५६२) से अधिक ठीक मालूम होते हैं। किंतु विरक्त शिष्यों द्वारा मान्य स्वामी जी का देहावसान

---

१. श्री स्वामी हरिदास अभिनंदन ग्रंथ, पृ० ७१

संवत् (१६३२) गोस्वामियों द्वारा मान्य देहावसान संवत् (१६६४) की अपेक्षा अधिक ठीक बैठता है। स्वामी जी के जीवन-काल को सं० १६६४ तक खींचना ऐतिहासिक घटनाओं की संगति से सार्थक नहीं मालूम होता है।

'चक्र' जी के लेखानुसार ऐसा जान पड़ता है कि 'मिराते सिकंदरी व मिराते अकबरी' ग्रंथ में स्वामी जी का जन्म संवत् ही होगा; उनके वृंदाबन-आगमन और देहावसान के संवत् कदाचित उसमें नहीं हैं। उक्त संवतों के संबंध में गोस्वामियों की मान्यता का क्या आधार है, यह स्पष्ट नहीं हुआ है। स्वामी जी २५ वर्ष की आयु में वृंदाबन आये थे, और वहाँ पर ७० वर्ष निवास करने के उपरांत ९५ वर्ष की आयु में उनका देहावसान हुआ था—यह मान्यता 'निज मत सिद्धांत' ग्रंथ के अनुसार विरक्त शिष्यों की है[1]। यदि गोस्वामियों की तद्विषयक मान्यता का आधार भी उक्त ग्रंथ ही है, तब उनके द्वारा 'निज मत सिद्धांत' ग्रंथ की अन्य बातें स्वीकार न करने का औचित्य नहीं माना जायगा। यदि गोस्वामी गण स्वामी जी के वृंदाबन-निवास की अवधि ७० वर्ष को उनके जीवन-काल की पूर्णावधि मानलें, तो इस प्रकार निकला हुआ देहावसान संवत् (१६३९) उनके द्वारा मान्य जन्म संवत् (१५६९) और वृंदाबन-आगमन संवत् (१५९४) की तरह ही ऐतिहासिक घटनाओं की संगति से ठीक हो सकता है। किंतु ऐसा मानने के लिए प्रामाणिक आधार भी होना चाहिए।

---

१. गृह में वर्ष पचीस बिताये। फिर वैराग-त्याग उपजाये॥
सत्तर वर्ष कीन्ह बन बासा। गुप्त भाव कीन्हौ परकासा॥
—निज मत सिद्धांत (मध्यखंड)

विरक्त शिष्यों की मान्यता का प्रमुख स्रोत 'निज मत सिद्धांत' ग्रंथ है। उसी के आधार पर श्री सहचरिशरण कृत 'गुरु प्रणालिका', 'आचार्योत्सव सूचना' और 'ललित प्रकाश' में तथा बाद में ब्रह्मचारी विहारीशरण द्वारा संपादित 'निंबार्क-माधुरी' में तद्विषयक कथन किये गये हैं। किशोरदास जी तथा सहचरिशरण जी १६ वीं शती के भक्त कवि थे और विहारीशरण जी आधुनिक काल के लेखक हैं। इससे सिद्ध होता है कि विरक्त शिष्यों की मान्यता का आधार अधिक पुराना नहीं है। इन ग्रंथों में तिथि-संवत् की भी भूलें हैं, जिनके कारण वे इतिहास की कोटि में नहीं आते हैं। फिर भी इनमें स्वामी हरिदास और उनकी विरक्त शिष्य परंपरा के संतों से संबंधित जैसी प्रचुर सामग्री मिलती है, वैसी किसी अन्य स्रोत से उपलब्ध नहीं होती है। इन ग्रंथों के संक्षिप्त विवरण इस प्रकार हैं—

निज मत सिद्धांत—इस ग्रंथ के रचयिता श्री किशोरदास थे। वे स्वामीजी की विरक्त परंपरा में श्री पीतांवरदास के शिष्य थे। उनका जन्म १८ वीं शती के मध्य काल में आमेर में हुआ था। वे सं० १७९१ में वृंदावन आकर हरिदासी संप्रदाय में दीक्षित हुए थे। उस समय निधुबन को लेकर स्वामी जी के विरक्त शिष्यों और गृहस्थ गोस्वामियों में भारी झगड़ा हो रहा था। उसके परिणाम स्वरूप विरक्त शिष्यों के तत्कालीन आचार्य ललितकिशोरीदास जी को निधुबन से हट कर यमुना किनारे पर बाँस की टट्टियों में रहना पड़ा था। तभी से 'टट्टी-स्थान' की प्रसिद्धि होने लगी। ललितकिशोरीदास जी के शिष्य ललितमोहिनीदास जी टट्टी स्थान के विधिवत् महंत बने। तभी से विरक्त शिष्यों का संबंध निंबार्क संप्रदाय से सुदृढ़ हुआ और 'टट्टी स्थान' विरक्त परंपरा का प्रमुख केन्द्र बन गया।

'निज मत सिद्धांत' ग्रंथ की रचना ऐसे ही वातावरण में हुई थी। उसमें जहाँ स्वामी हरिदास जी और उनकी विरक्त परंपरा के आचार्यों और उनके शिष्यों का सर्व प्रथम विस्तृत विवरण मिलता है, वहाँ स्थान-स्थान पर निंबार्क संप्रदाय के प्रचार का आग्रह भी दिखलाई देता है। इस ग्रंथ के आदि खंड में श्री निंबादित्य जी और उनके द्वैताद्वैत मत का महत्त्व बतलाते हुए श्री आशुधीर तथा उनके कुल का विस्तार पूर्वक वर्णन किया गया है और उन्हें निंबार्क संप्रदाय का अनुयायी बतलाया गया है। इसके मध्य खंड में स्वामी हरिदास जी के जन्म, दीक्षा-प्राप्ति और वृंदाबन निवास की कथा है। इसके बाद श्री विट्ठल विपुल सहित विरक्त परंपरा के आचार्यों तथा उनके कतिपय शिष्यों का वृत्तांत लिखा गया है। उसका रचना-काल सं० १८२० का अनुमानित किया गया है[1]। स्वामी जी के संबंध में इस ग्रंथ का सुप्रसिद्ध उल्लेख इस प्रकार है—

> **संवत पंद्रहसै सेंतीसा। भादों शुक्ल अष्टमी दीसा।।**
> **बुद्धबार मध्याह्न बिचारयौ। श्री हरिदास प्रगट तनु धारयौ।।**
> **गृह में वर्ष पचीस बिताये। फिर बैराग-त्याग उपजाये।।**
> **सत्तर बर्ष कीन्ह बन बासा। गुप्त भाव कीन्हौ परकासा।।**

यह ग्रंथ वृंदाबन के टट्टी स्थान से प्रकाशित होकर हरिदासी संप्रदाय के भक्तों में अमूल्य वितरित किया गया था। यही ग्रंथ हिंदी साहित्य के विद्वानों को भी प्राप्त हुआ; जिसके आधार पर मिश्रबंधु विनोद, ब्रज माधुरी सार, शुक्ल जी कृत हिंदी साहित्य का इतिहास आदि ग्रंथों में स्वामी जी तथा उनकी परंपरा के आचार्यों के जीवन-वृत्तांत और उनसे संबंधित तिथि-संवत् आदि लिखे गये हैं।

---

१. श्री वासुदेव गोस्वामी कृत 'भक्त-कवि व्यास जी', पृ० ३३

इस ग्रंथ को दोहा-चौपाई छंदों में लिखा गया है। श्री किशोरदास की अन्य रचनाओं का संकलन श्री निंबार्क शोध मंडल द्वारा प्रकाशित 'सिद्धांत-रत्नाकर' में किया गया है। इससे जान पड़ता है कि उन्होंने पर्याप्त मात्रा में रचना की थी, जो काव्य की दृष्टि से साधारणतया अच्छी है।

गुरु-प्रणालिका, आचार्योत्सव सूचना और ललितप्रकाश— इनके रचयिता टट्टी स्थान के आचार्य श्री सहचरिशरण थे। उनका जन्म सं० १८३० में हुआ था और वे १८७८ में टट्टी स्थान के महंत बनाये गये थे। उनका देहावसान सं० १८९४ में हुआ था। उनकी रची हुई 'सरस मंजावली' एक उत्कृष्ट काव्य कृति है, जिसमें भावों की छटा दर्शनीय है।

'गुरु-प्रणालिका' में हंसावतार से लेकर ललितकिशोरीदास तक निंवार्क संप्रदायचार्यों का उल्लेख किया गया है। इसमें स्वामी हरिदास जी को आशुधीर जी का शिष्य बतलाया गया है। स्वामी जी से संबंधित इसका उल्लेख इस प्रकार है—

श्री स्वामी हरिदास रसिक सिरमौर अनीहा।
द्विज सनाढ्य सिरताज सुजस कहि सकत न जीहा॥
गुरु अनुकंपा मिल्यौ ललित निधिबन तमाल के।
सत्तर लौं तरु बैठि गने गुन प्रिया-लाल के॥

'आचार्योत्सव सूचना' में स्वामी हरिदास जी सहित उनके संप्रदाय के अष्टाचार्यों का उल्लेख तिथि-संवत् के साथ किया गया है। इसके आरंभ में ही स्वामी हरिदास के संबंध में निम्न लिखित कथन है—

श्री स्वामी हरिदास कृपानिधि, रसिक अनन्य महीपति।
तिनकौ प्रगट जन्म लीला दिन, सुनि हुलसाय लाय चित॥
भादौं शुक्ल अष्टमी मनहर, पुनि बुधवार पुनीता।
संबत पंद्रहसै सैंतिस कौ, ता बिच उदित सुमीता॥

मुदित बिराजे रहे मही पर, वर्ष पाँच नव नीके।
गेह वास पच्चीस वर्ष भरि, भयौ मोद सब ही के।।
पंद्रहसै बासठ सौं लैकै हायन सत्तर जानौं।
बस बिराग युत बृंदाबन में तनु मन सुख सों सानौं।।
प्रगट भयौ आनँद कौ विग्रह, सुखमा-सिंधु बिहारी।
मारगशिर शुक्ला सु पंचमी, रसिकन कौं हितकारी।।
संबत कौन ताहि मैं बरनौं, जो सुनि लेहु सुजाना।
पंद्रह सै सड़सठ कौ कहियै, लहियै प्रेम निदाना।।
श्री स्वामी आश्विन सुदि पूनौ, ताकौं महल पधारे।
सोलह सै बत्तिस कौ संबत, समझि लेहु मन प्यारे।।

'ललित प्रकाश' में दो उल्लास (खंड) हैं। प्रथम उल्लास में स्वामी हरिदास जी का विस्तृत वृत्तांत और द्वितीय उल्लास में उनकी शिष्य परंपरा के आचार्यों का वर्णन है। स्वामी जी सहित समस्त आचार्यों को निंबार्क संप्रदाय के अंतर्गत बतलाया गया है। ग्रंथ में सर्वत्र सांप्रदायिकता और प्रचारात्मकता का आग्रह है।

भक्त सिंधु—श्री ग्राउस ने स्वामी जी का जीवन-वृत्तांत लिखते हुए 'भक्तसिंधु' नामक एक रचना का उल्लेख किया है। उन्होंने बताया है, 'भक्त सिंधु' की २११ पंक्तियों में स्वामी हरिदास का चरित्र वर्णित है। उसमें उनका जन्म सं० १४४१ में और देहावसान सं० १५३७ में लिखा गया है[1]। कहने की आवश्यकता नहीं, ऐतिहासिक घटनाओं की संगति से उक्त संवत् सर्वथा अप्रामाणिक हैं। उस ग्रंथ में वर्णित घटनाओं के कारण स्वयं श्री ग्राउस ने ही उसे अविश्वसनीय बतलाया है[2]। यह ग्रंथ इस समय नहीं मिलता है।

---

१. मथुरा मेमाअर्स, पृ० २२०   २. मथुरा मेमाअर्स, पृ० २२१

आधारों की भिन्नता का कारण—

दोनों मतों के आधारभूत ग्रंथों की परस्पर भिन्नता और उनकी कमियों के कारण जहाँ उन्हें सहसा स्वीकार नहीं किया जा सकता है; वहाँ उनकी दीर्घकालीन परंपराएँ, जो प्रायः अनुश्रुति के रूप में ही थीं, एकदम अस्वीकृत भी नहीं की जा सकती हैं। मध्य कालीन भक्तों में हरिदास नाम के अनेक महात्मा हुए थे। नाभाजी कृत 'भक्तमाल' में ७, ध्रुवदास कृत 'भक्त नामावली' में ४ और 'दो सौ बावन वैष्णवन' की वार्ता में ३ हरिदासों के उल्लेख मिलते हैं। उनमें से कई स्वामी हरिदास जी के समय में विद्यमान थे और कई बाद में हुए थे। स्वामी जी की शिष्य-परंपरा में भी एक हरिदास थे, जिनके विषय में नवनीत जी ने लिखा है—

> **श्री स्वामी हरिदास के शिष्य भये हरिदास।**
> **सुमिरन कर हरिदास कौ, होय गये हरिदास[1] ॥**

उन सभी हरिदासों की जीवन-घटनाएँ कालांतर में आपस में इतनी मिल गईं कि उन्हें प्रत्येक हरिदास से संबंधित रखना कठिन हो गया। स्वामी हरिदास जी उन सभी हरिदासों में सबसे अधिक प्रसिद्ध हुए, अतः उनके जीवन-वृत्तांत में अन्य हरिदासों की कतिपय बातें भी स्वतः मिल जाने की संभावना हो सकती है। ऐसा और भी अनेक प्राचीन तथा मध्य कालीन महापुरुषों के जीवन-वृत्तांतों के साथ हुआ है। हरिदास, कृष्णदास, रामदास, सूरदास आदि नाम भक्त जनों को अधिक प्रिय रहे हैं; अतः उक्त नामों के अनेक भक्त जन समय-समय पर होते रहे हैं, और उनके जीवन-वृत्तांत भी आपस में मिलते रहे हैं।

---

१. हरिदास वंशानुचरित, पृ० १८

स्वामी हरिदास जी से संबंधित दोनों प्रचलित मान्यताओं और उनके आधारों की भिन्नता का कारण यह भी हो सकता है कि उनमें न्यूनाधिक रूप में कई हरिदासों की जीवन-घटनाओं का संमिश्रण हो गया हो। ऐसी दशा में किसी एक मान्यता को सर्वथा प्रामाणिक मान कर स्वीकार करना और दूसरी को एकदम अप्रामाणिक कह कर अस्वीकार कर देना किसी भी तटस्थ विचारक के लिए कदापि उचित नहीं है। अच्छा यह होगा, केवल विवाद रहित बातों का ही प्रचार किया जाय; और विवाद की बातों पर बल न देकर उनके संबंध में अधिकाधिक अनुसंधान करते हुए सत्य का निर्णय किया जाय।

रचनाएँ —

स्वामी हरिदास जी का महत्त्व एक महान् संत होने के कारण है; किंतु उनकी रचनाएँ अपना पृथक् महत्त्व रखती हैं, जो उनकी परंपरा के भक्तों में वेदों के समान मान्य हैं।

स्वामी जी की प्रामाणिक रचनाओं के रूप में १२८ ध्रुपद माने जाते हैं। इनमें से १८ 'सिद्धांत के पद' और १०८ या ११० 'केलिमाल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिद्धांत के पदों में किसी विशिष्ट दार्शनिक मत के निरूपण का प्रयास नहीं है; वरन् उनमें ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की सामान्य बातों का कथन किया गया है। 'केलिमाल' में स्वामी जी के उपास्य श्री श्यामा-कुंजबिहारी के नित्य बिहार का शृंगारिक वर्णन है। इन रचनाओं के अतिरिक्त उनके नाम से कुछ पद और भी मिलते हैं; किंतु उनकी प्रामाणिकता संदिग्ध है।

हिंदी साहित्य के कतिपय विद्वानों ने स्वामी जी की रचनाओं को 'ऊबड़-खाबड़' तथा उनके 'शब्द-चयन में चातुर्य की कमी' बतलाई है! स्वामी जी की समस्त रचनाओं के अध्ययन

से ज्ञात होता है कि इस प्रकार के कथन द्वारा वास्तव में उनके साथ न्याय नहीं किया गया गया है। इस संबंध में यह ध्यान में रखने की बात है कि स्वामी जी की रचनाएँ अन्य भक्त कवियों की भाँति गायन के साथ ही साथ पठन-पाठन के लिए उपयुक्त 'पद' रूप में कथित नहीं हुई हैं; बल्कि संगीत की विशिष्ट शास्त्रोक्त शैली 'ध्रुपद' गायन के रूप में हैं। कवियों ने 'पद' और 'ध्रुपद' में भेद किया है। ब्रजभाषा काव्य में छप्पय, कवित्त, दोहा, चौपाई, कुंडलिया आदि अनेक छंदों में विशिष्ट कवियों की रचनाएँ उपलब्ध हैं। किसी गोपाल नामक कवि ने उक्त छंदों के विशेषज्ञ कवियों का नामोल्लेख करते हुए जहाँ 'पद' और 'ध्रुपद' में भेद माना है, वहाँ उनके विशिष्ट रचयिताओं के रूप में क्रमशः सूरदास और हरिदास के नाम भी दिये हैं— "भनत 'गुपाल' ये जहान बीच जाहर हैं, सूर कौ 'पद' और 'ध्रुपद' हरिदास कौ[1]।"

स्वामी हरिदास जी के ये 'ध्रुपद' साधारण पाठक के लिए नहीं हैं, वरन् संगीतज्ञों और साधकों के लिए हैं। लंबी शब्द-योजना, यति की विषमता और पंक्तियों की आकार गत न्यूनाधिकता से वे पढ़ने में अटपटे से मालूम होते हैं; किंतु ताल

---

१. चंद जू कौ 'छंद', 'छप्पै' नाभा औ बेताल जू की,
कैसौ कौ 'कवित्त', 'दोहा' बिहारी के सुगाँस कौ।
बल्लभरसिक की 'माँझ', गिरधर कवि 'कुंडलिया',
वाजिद 'अरिल्ल' जो है अतिसै प्रकास कौ॥
रसरास 'रेखता', और 'बात' बीरबल जू की,
तुलसी की 'चौपाई' औ 'सलोक' वेदव्यास कौ।
भनत 'गुपाल' ये जहान बीच जाहर हैं,
सूर कौ 'पद' और 'ध्रुपद' हरिदास कौ॥

में ठीक होने से वे गायन के लिए सर्वथा उपयुक्त हैं। आज का साधारण संगीतज्ञ कदाचित उन्हें गा भी न सके; किंतु ध्रुपद शैली का अभ्यस्त गायक उन्हें भली प्रकार गा सकता है।

स्वामी जी की रचनाओं में 'केलिमाल' का प्रचार बहुत कम रहा है; क्योंकि इसे अनधिकारी व्यक्तियों से बचाने के लिए सदैव अप्रकाशित रखने की चेष्टा की गई है। उनके 'सिद्धांत के पद' अपेक्षाकृत अधिक प्रचलित हैं और हिंदी के साहित्यकारों को भी प्रायः वे ही उपलब्ध रहे हैं। उनकी भाषा विषय के अनुरूप कुछ 'साधुक्कड़ी' है; जिसमें कोड, वंदिस, खंदिस, नंदिस, जागर, बेकारौदे, ओटपाट जैसे शब्दों का प्रयोग हुआ है। इन शब्दों में मधुरता और कोमलता की कमी कही जा सकती है। इनके साथ ही विचित्र पद-योजना और यति की विषमता तो है ही, इसीलिए स्वामी जी की यह रचना लोगों को कुछ 'ऊबड़-खाबड़' सी जान पड़ती है। फिर हरिदास डागुर नामक एक अन्य संगीतज्ञ की कुछ रचनाएँ स्वामी हरिदास की रचनाओं में मिला दी गई हैं और कुछ अटपटे पदों को भी स्वामी जी की रचनाएँ समझ कर छापा गया है[1]! इन सब कारणों से हिंदी साहित्य के इतिहासकार स्वामी जी की रचनाओं के संबंध में यथार्थ मत प्रकट नहीं कर पाते हैं।

---

१. 'संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ' नामक पुस्तक में स्वामी हरिदास जी के नाम से २७ ध्रुपद प्रकाशित किये गये हैं। इनमें से ७ ध्रुपद हरिदास डागुर के और कई अन्य हरिदासों के हैं। हरिदास डागुर के नाम का एक ध्रुपद देखिये—

तरैया नाद महानद को मुरछना गमक नीर सुरत अगाध तान तरंग,
ताल तरल बही अलापन ओड़व खाड़व पुरण धार।
आरोही अवरोही दोउ कुल पुर अंस न्यास ग्राह ग्रह तान,
भँवर सरोज वादी विवादी सिवार॥

स्वामी जी की प्रामाणिक रचनाएँ, विशेषतया 'केलिमाल' के पद, न तो वास्तव में 'ऊबड़ खाबड़ हैं और न उनमें मधुरता और कोमलता की कमी है। फिर भी उनकी वचनावली में एक प्रकार का बाँकापन है[1], जो अन्य भक्त कवियों से उन्हें विशिष्टता प्रदान करता है। यह विशिष्टता उनके व्यक्तित्व में है, उनके संगीत में है और सबसे अधिक उनकी भक्ति तथा उपासना में है।

नौका अवाज पर राग रागणी पथिक चढ़त उतारत गुनी जन वार पार।
'हरिदास डागुर' उत्तम नायक धारू ध्रुपद छंद गुण वल्ली,
पत पतार संगीत गीत अधार ।।१२।।

उसी पुस्तक में किसी जन हरिदास का निम्न पद भी स्वामी हरिदास की रचना समझ कर छापा गया है—

म्हांरी राखो लाज मुरारी जी मोरा मन लागो हरि चरनां सु।
जिन चरना कूं कमला सेवे ब्रह्मा आदि गनेस जी।
सारद नारद श्री सुखदेवा सेस महेश फनीस जी ।।
सुरपत नरपत गणपत नायक रस पीये रसनासु जी।
ध्रुव तारे प्रहलाद उबारे राख लियो जतनासु जी ।।
चरन कंवल में चित विलग्यो है पायो निगम भनासु जी।
जन 'हरिदास' परम पद परसे रोम-रोम रसनासु जी ।।२७।।

१. छाकी छेमावली है, नेह की नेमावली है,
पावन प्रेमावली है, बेदना बिनास की।
हास हरषावली है, सार सरसावली है,
बाद बरषावली है, आनँद विकास की ।।
सुचि समरावली है, अंक अमरावली है,
भाव भ्रमरावली है, सुमन सुबास की।
न्याय नचनावली है, राग रचनावली है,
बाँकी वचनावली है, किधौं हरिदास की ।।
—श्री सहचरिशरण कृत 'ललित प्रकाश'।

'केलिमाल' में स्वामी जी कृत अनेक उत्कृष्ट पद मिलते हैं। इनमें भाव-सौन्दर्य के साथ ही साथ भाषा की कोमलता और मधुरता भी है। दिव्य श्रृंगार रस से तो वे ओतप्रोत हैं। इनके कथन में सर्वत्र स्वाभाविकता है, कृत्रिमता और बनावट ढूँढ़ने पर भी नहीं मिलती है। इन्हें पढ़ने पर ऐसा जान पड़ता है कि इनकी रचना स्वामी जी ने स्वानुभव से की है। अपने उपास्य स्वरूप का दिन-रात चिंतन और ध्यान करते हुए जब वे समाधिस्थ हो जाते थे, तब उन्हें श्यामा-श्याम की दिव्य लीलाओं का जो अनुभव होता था, उसी का गायन उन्होंने 'केलिमाल' के पदों द्वारा किया है। यहाँ पर उनके कतिपय पद उदाहरणार्थ उपस्थित किये जाते हैं।

उबटन और स्नान के अनंतर वस्त्र धारण कर फुलवारी में अलकों को सुखाती-सँवारती हुई राधिका जी की दिव्य शोभा का वर्णन देखिये—

सोंधें न्हाय बैठी पहिरि पट सुंदर,
जहाँ फुलवारी तहाँ सुखवति अलकैं।
कर-नख सोभा फल केस सम्हारत,
मानों नव घन में उडगन झलकैं॥
विविध सिंगार लिएँ आगें ठाढ़ी प्रिय सखी,
भयौ भरुआन रति-पति दल दलकैं।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी को—
छबि निरख लागत नाँहीं पलकैं॥

राधिका जी की अपूर्व शोभा की एक दूसरी झाँकी भी देखिये—

गुन रूप भरी, बिधिना संवारी,
दुहूँ कर कंकन एक-एक सौहै।
छूटै बार, गरैं पोत, दिपत मुख की जोत,
देखि-देखि रीझै तोहि प्रानपति, नैंन सलौनी मन मौहै॥

सब सखि निरखि थकित भई आली,
ज्यों ज्यों प्रानप्यारी तेरौ मुख जोहै।
रस बस कर लीने श्री हरिदास के स्वामी,
स्यामा तेरी उपमा कों कहिबौं को है।।

आभूषणों से सुसज्जित कजरारे नेत्रों वाली श्यामा जी पर रीझे हुए कुंजबिहारी की मनोदशा देखिये—

बनी री तेरे चारि-चारि चूरी करनि ।
कंठसिरी दुलरी हीरनि की, नासा मुक्ता, ढरनि ।।
तैसेई नैननि कजरा फबि रह्यौ, निरखि काम डरनि ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, रीझि पिय पग परनि ।।

श्रीकृष्ण शपथपूर्वक राधिकाजी से कहते हैं, तेरी वेणी भला मुझसे अच्छी और कौन गूँथ सकता है ! अपने कथन को सार्थक करने के लिए उन्होंने अनेक रंगों के पुष्पों से राधा के केशों को ही नहीं सँभाला, बल्कि उनके नेत्रों में काजल लगा कर नख से शिखा तक उन्हें सुजज्जित कर दिया—

बैनी गूँथि कहा कोऊ जानैं, मेरी सी तेरी सौं ।
बिच-बिच फूल सेत-पीत-राते, को करि सकै रीसों ।।
बैठे रसिक सँवारत बारनि, कोमल कर ककही सों ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा नख-सिख लौं बनाई,
दै काजर नख ही सों ।।

श्यामा को रिझाने के लिए श्याम प्रसन्न मन से नृत्य कर रहे हैं। उनके साथ पशु-पक्षी ही नहीं, प्रकृति भी नृत्य रत है। मोर नाँच रहे हैं, कोकिलें अलाप रही हैं, पपीहे स्वर-

संगति कर रहे हैं, मेघ मृदंग बजाते हैं और बिजली दीपक दिखा रही है। अजीब समाँ बँधा है! कुँजबिहारी का बड़ा सौभाग्य है कि राधा ने रीझ कर उन्हें हँसते हुए कंठ से लगा लिया—

नाँचत मोरनि संग स्याम मुदित स्यामहिं रिझावत।
तैसीऐ कोकिला अलापत, पपीहा देत सुर,
तैसेई मेघ गरजि मृदंग बजावत॥
तैसीऐ स्याम घटा निस सी कारी,
तैसीऐ दामिनि कोंधै दीप दिखावत।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
रीझि रावे हँसि कंठ लगावत॥

श्यामा-श्याम की नाना प्रकार की केलि-क्रीड़ाओं का का कथन होने से 'केलिमाल' नाम की सार्थकता स्वयं सिद्ध है। इसमें स्वामी जी ने अपने उपास्य युगल स्वरूप के दिव्य शृंगार का ऐसा रसपूर्ण वर्णन किया है कि वह सहृदय रसिक जनों को दिव्यानंद प्रदान करने में अनुपम है।

स्वामी जी की रचनाओं का क्षेत्र अत्यत सीमित है। श्यामा-श्याम के नित्य बिहार के उपासक होने के कारण उन्होंने शृंगार रस का, और उसके भी केवल संयोग पक्ष का कथन किया है; वियोग को उन्होंने छूआ तक नहीं। संयोग या संभोग के भी उन्होंने कुछ विशिष्ट अंग ही लिये हैं। श्यामा-कुंजबिहारी के युगल स्वरूप, उनकी आसक्ति, सुरति-निवेदन, मान-मनावन, केलि-क्रीड़ा, भूलन और नृत्य के रसपूर्ण कथन की ओर ही उनकी रुचि रही है। ऋतुओं में उन्होंने बसंत और पावस को पसंद किया है। डोल-भूलन और नृत्य के साथ गायन-वादन का वर्णन उनकी संगीत विषयक अभिरुचि का परिचायक है।

रचनाओं की टीका—

स्वामी जी की रचनाओं की कई टीकाएँ उपलब्ध हैं। 'केलिमाल' की सबसे प्राचीन टीका श्री नागरीदास कृत है, जो विक्रमी की १७ वीं शती में रची गई थी। इसे टीका तो क्या, भाष्य कहना उचित होगा। इसमें पदाभास और फल सहित समस्त पदों की शृंगार रस पूर्ण विस्तृत व्याख्या की गई है। बीच-बीच में अन्य महात्माओं के उद्धरणों से व्याख्या को पुष्ट किया है। 'केलिमाल' की दूसरी टीका श्री पीतांबरदास कृत १८ वीं शती की है। तीसरी टीका श्री ललितमोहिनीदास के कृपापात्र महंत राधाशरण कृत 'वस्तुदर्शिनी' है, जो १९ वीं शती में निर्मित हुई थी। इन टीकाओं में पदों के गूढ़ भावों की व्याख्या करने का जितना प्रयास किया गया है, उतना उनके सरल और सुबोध अर्थ करने का नहीं। इससे साधारण पाठकों के लिए ये अधिक उपयोगी नहीं हैं। ये सभी टीकाएँ अभी तक अप्रकाशित हैं। इनके आधार पर 'केलिमाल' की सरल गद्य में एक टीका प्रकाशित होना अत्यंत आवश्यक है।

सिद्धांत के पदों की दो विस्तृत टीकाएँ श्री अमोलराम शास्त्री और श्री ललिताप्रसाद पाठक कृत उपलब्ध हैं। दोनों टीकाएँ आधुनिक काल की हैं; किंतु उनकी शैली वही पुरानी व्याख्यात्मक है। ये दोनों टीकाएँ छप चुकी हैं।

संगीत संबंधी देन—

स्वामी हरिदास जी संगीत के महान् आचार्य थे। उनके संबंध में यह किंवदंती बड़ी प्रसिद्ध है कि वे संगीत-सम्राट तानसेन के गुरु थे। संगीत से साधारणतया गायन का बोध होता है; किंतु इसके अंतर्गत गायन के साथ ही साथ वादन और नृत्य

कलाएँ भी हैं। स्वामी जी इन तीनों कलाओं में पारंगत थे। उनके द्वारा संगीत के इन तीनों अंगों की उन्नति का प्रशंसनीय कार्य हुआ था। इस संबंध में इनकी देन अत्यंत महत्वपूर्ण है।

स्वामी जी संगीत की ध्रुपद शैली के आचार्य थे। ध्रुपद की गायकी के आविष्कार और प्रचार का श्रेय ग्वालियर के राजा मानसिंह तोमर को दिया जाता है। अबुलफजल कृत 'आईने अकबरी' में मानसिंह तोमर के गायकों के नाम नायक बख्शू, मच्छू और भानु लिखे गये हैं, जिनकी सहायता से ग्वालियर-नरेश ने ध्रुपद का प्रचार किया था। फकीरुल्ला कृत 'राग दर्पण' से ज्ञात होता है कि मानसिंह तोमर के समय में नायक बख्शू, नायक मन्नू, नामक कर्ण और महमूद लोहाँग नामक संगीतज्ञों ने ध्रुपद की गायकी का व्यापक प्रचार किया था। उन संगीतज्ञों में से बख्शू के अतिरिक्त अन्य किसी के भी रचे हुए ध्रुपद आज-कल उपलब्ध नहीं होते हैं। इस समय जो ध्रुपद मिलते हैं, उनमें से अधिकांश बैजू और तानसेन के रचे हुए हैं। स्वामी जी की रचनाओं को भी ध्रुपद कहा जाता है, यह पहले ही लिखा जा चुका है।

मानसिंह तोमर और उसके गायकों ने ध्रुपद का प्रचार अवश्य किया था, किंतु वे उसे शुद्ध भारतीय संगीत की आत्मा प्रदान नहीं कर सके थे। भारतीय संगीत की आत्मा धार्मिक भावना है; उसके बिना वह निर्जीव शरीर के समान है। उसका मूल उद्देश्य लौकिक लाभ अथवा मनोविनोद न होकर पारलौकिक उन्नति और ईश्वरोपासना है। मानसिंह तोमर और उसके दरबारी गायक उसे वह रूप प्रदान नहीं कर सके, जो स्वामी हरिदास जी और ब्रज के अन्य भक्त गायकों ने उसे दिया था।

अकबर के दरबार में उस समय के विश्वविख्यात संगीतज्ञ थे; जिनमें तानसेन, बाबा रामदास और बाज बहादुर प्रमुख थे। ब्रज में उस समय स्वामी हरिदास और गोविंद स्वामी जैसे संगीताचार्य तथा सूरदास, परमानंददास और कुंभनदास जैसे विख्यात गायक थे; जो अकबरी दरबार के संगीतज्ञों से किसी प्रकार कम नहीं थे। अकबर ने उन्हें दरबार में लाने की अनेक चेष्टाएँ कीं, नाना प्रकार के प्रलोभन दिये; किंतु वे त्यागी महात्मा राज-दरबार की छाया से भी दूर भागते थे। यदि वे चाहते तो सम्राट अकबर उनके लिए अपार संपत्ति और सांसारिक सुख-सुविधा के समस्त साधन सुलभ कर सकता था; किंतु वे तो किसी राजा-महाराजा का मुख तक नहीं देखना चाहते थे। वे रूखी-सूखी खाकर अपने इष्टदेव की भक्ति में ही तल्लीन रहना अपना कर्त्तव्य समझते थे। उनके संगीत का रसास्वादन कोई लौकिक पुरुष, चाहें वह सम्राट ही क्यों न हो, नहीं कर सकता था। वे निर्गुणिया संतों की भाँति जन-हित के लिए और कतिपय त्यागी भक्तों की भाँति स्वान्तः सुख के लिए भी नहीं गाते थे। उनका गायन तो अपने इष्टदेव को रिझाने के लिए होता था; ताकि वे किसी प्रकार उसकी महती कृपा की तनिक सी कोर ही प्राप्त कर सकें[1]!

स्वामी हरिदास जी ने जीवन पर्यन्त संगीत की साधना इसलिए की, कि वे उसे लौकिक मनोविनोद के निम्न धरातल से उठा कर उपासना के उच्च मंच पर प्रतिष्ठित कर सकें और विदेशी तत्वों से परिष्कृत कर उसे शुद्ध भारतीय रूप प्रदान

---

१. नैक कृपा की कोर लहौं, तो उमँगि-उमँगि जस गाऊँ।
नेह भरी नव नागरि के, रस-भावन कौं दुलराऊँ॥

तानसेन और स्वामी हरिदास

कर सकें। यह किवदंती बड़ी प्रसिद्ध है कि जब शाहंशाह अकबर अनेक चेष्टाएँ करने पर भी स्वामी हरिदास को अपने दरबार में गायन करने के लिए नहीं बुला सके, तब वे छद्म वेश में तानसेन के साथ वृंदाबन पहुँचे। वहाँ तानसेन ने जाने या बे जाने जिस प्रकार का गायन किया, उसे शुद्ध रूप में उपस्थित करने के लिए स्वामी हरिदास को भी गाना पड़ा। जो संगीत उनके 'स्वामी श्यामा-कुंजबिहारी' के लिए ही अर्पित था, उसकी दिव्य छटा अकबर को अनायास ही मिल गई और वे उसका रसास्वादन कर धन्य हो गये! यह इतिहास प्रसिद्ध बात है कि तानसेन ने ध्रुपद की गायकी में प्राचीन परंपरा के विरुद्ध नये प्रयोग किये थे। उसके फलस्वरूप उसने पुराने रागों के स्थान पर नये रागों को भी जन्म दिया था। उसका यह कार्य स्वामी हरिदास जैसे शुद्ध भारतीय संगीत के समर्थकों को पसद नहीं आया। तानसेन ने स्वामी जी के समक्ष जो गायन किया था, वह ध्रुपद की उसी विकृत शैली का हो सकता है, जिसका परिष्कार करना स्वामी जी अपना आवश्यक कर्त्तव्य समझते थे। इसीलिए उन्हें इच्छा न रहते हुए भी गाना पड़ा था।

जहाँ तक संगीत के दूसरे अंग वादन और नृत्य का संबंध है, उनके लिए भी स्वामी हरिदास जी की देन महत्त्वपूर्ण है। उनके समय में भारतीय वाद्य यंत्रों के स्थान पर विदेशी तत्वों से प्रभावित नये वाद्य यंत्र बनने लगे थे। कुछ वाद्य यंत्र तो परंपरागत भारतीय वाद्यों को बिगाड़ कर बनाये गये थे। जैसे वीणा को बिगाड़ कर सहतार, जिसका अपभ्रंश सितार है, बनाया गया और बाद में पखाबज के दो टुकड़े कर तबला का आविष्कार किया गया था। उन नये वाद्य यंत्रों का प्रयोग उस

समय के अनेक संगीतज्ञ करने लगे थे। यह स्वामी हरिदास जी को पसंद नहीं था। वह स्वयं शुद्ध भारतीय वाद्य यंत्र से ही वादन करते थे। नृत्य के संबंध में उनकी देन रास के रूप में विद्यमान है।

ब्रज का रास नृत्य प्रसिद्ध है। भक्ति संप्रदाय के विभिन्न महात्माओं ने भक्ति-प्रचार का प्रभावशाली माध्यम जानकर इसे अपनाया था। श्री राधा-कृष्ण के नित्य रास तथा लीलानुकरण के रूप में इसे ब्रज के रासधारी बड़े भावपूर्ण ढंग से प्रस्तुत करते हैं। यह नृत्य ब्रज के सभी कृष्णोपासक संप्रदायों में प्रचलित है। इसके आरंभ करने का श्रेय ब्रज के जिन महात्माओं को दिया जाता है, उनमें स्वामी हरिदास का स्थान संगीताचार्य होने के कारण सर्वाधिक महत्व का है। भोज कृत 'सरस्वती कंठाभरण' में हल्लीसक नामक एक मंडल नृत्य का उल्लेख हुआ है, जो वर्तमान रास के समान ही कोई नृत्य जान पड़ता है। इसके अतिरिक्त गोपाल गूजरी नृत्य, तालक रास, लकुट रास आदि कई प्रकार के नृत्यों की प्राचीन परंपराएँ भी मिलती हैं। गुप्तकाल के अभिलेखों और मालवा के बाग नामक स्थान पर बने हुए भित्ति चित्रों से रास की प्राचीनता सिद्ध होती है। ऐसा जान पड़ता है कि रास की वह प्राचीन परंपरा स्वामी हरिदास के समय से बहुत पहिले ही लुप्त हो गई थी। उसे उन्होंने ब्रज के अन्य महात्माओं के सहयोग से पुनः प्रचलित किया था। ऐसा कहा जाता है, ब्रज के पुनः प्रचलित प्रथम रासोत्सव में स्वामी जी ने सक्रिय भाग लेते हुए प्रिया जी का श्रृंगार स्वयं किया था। इसका उल्लेख 'रास-सर्वस्व' में इस प्रकार हुआ है—

श्री स्वामी हरिदास, कियौ श्रृंगार प्रिया कौ।
अरु आचारज देव, कियौ मोहन रसिया कौ।।

स्वामी जी की रचनाओं में गायन, वादन और नृत्य से संबंधित अनेक पारिभाषिक शब्द, वाद्य यंत्रों के नाम और उनके बोल तथा नृत्य की अनेक मुद्राओं और तालों के संकेत मिलते हैं। इनसे उनके अपार संगीत-ज्ञान का अच्छा परिचय मिलता है।

स्वामी जी और तानसेन—

स्वामी हरिदास और तानसेन के गुरु-शिष्य होने की किंवदंती बहुत प्रसिद्ध है; यद्यपि इसका कोई समकालीन लिखित प्रमाण प्राप्त नहीं होता है। गायकों की मंडली में कुछ ऐसे ध्रुपद प्रचलित हैं, जिनमें तानसेन द्वारा किसी हरिदास को अपना गुरु स्वीकार किया गया है[1]। इन ध्रुपदों की अटपटी शब्द-योजना के कारण इन्हें प्रामाणिक नहीं माना जा सकता है। फिर भी यह किंवदंती विचार योग्य है।

---

१. पाई विद्या मैं परम, पुनि पाई है और अलख माई है,
गुरु हरिदास चरन निस्तारौ है।
मोकों जगत-पिता नें, तोकों जगत-माता नें, दोउ अधिकारौ है,
शिव गान संगत विस्तारौ है॥
तेरी तान राम बान, मदनराय उड़गन समान, और गुनी भाजे,
भाजौ है तानसेन, माता जीवदान देउ, तोरे चरन मोकों उभारौ है॥

अथवा—

आज जनम सफल भयौ तानसेन, बाबा हरिदास हाथ पकरचौ,
श्री राग सिखायौ पहले पहल।
मैं औरन सौं सीखौ शाह महम्मद गौस पीर समान,
नायक बक्सू की समाधि में पहले पहल॥

—संगीत (फरवरी १९५९) हरिदास अंक, पृ० ३३

स्वामी जी एक विख्यात संगीत शास्त्री होने के साथ ही साथ वैष्णव धर्म के अंतर्गत एक विशिष्ट भक्ति संप्रदाय के प्रवर्त्तक भी माने जाते हैं। उनके संप्रदाय में गुरु-शिष्य का जो अर्थ होता है, उसके कारण तानसेन को स्वामी जी का शिष्य नहीं कहा जा सकता है। स्वामी जी के संप्रदाय में एक मात्र श्री बिहारी जी ही उपास्य माने जाते हैं; जब कि तानसेन की रचनाओं में विविध देवी-देवताओं और पीर-पैगंवरों की स्तुतियाँ मिलती हैं। उनमें न तो स्वामी जी की शब्दावली का प्रभाव दिखाई देता है और न उनकी भक्ति-भावना की झलक ही मिलती है। ऐसी दशा में तानसेन का स्वामी जी का शिष्य होना प्रामाणिक ज्ञात नहीं होता है। फिर भी यह किंवदंती इतनी अधिक प्रसिद्ध है कि इसे एक दम कपोल कल्पित भी नहीं कहा जा सकता है।

यह किंवदंती कब से प्रचलित है, इसका ठीक-ठीक काल निर्णय करना तो संभव नहीं है; किंतु इसका दो शताब्दी से अधिक पुराना उल्लेख उपलब्ध है। किशनगढ़ नरेश महाराज सामंतसिंह उपनाम नागरीदास जी द्वारा सं० १८०० में रचित 'पद प्रसंग माला' में उक्त प्रसंग का इस प्रकार कथन हुआ है—

"एक समैं अकबर पातसाह तानसैन सौं बूझी जु तैं कौन सौं गायबौ सीख्यौ; कोऊ तोऊ तैं अधिक गावै हैं? तब वानैं कही जु मैं कौन गनती में हूँ। श्री वृंदाबन में हरिदास जी नाम वैष्णव हैं, तिनकौ गाइबे कौ हौं शिष्य हूँ। यह सुनि पातसाह तानसैन के संग जलघरी लै श्री वृंदाबन स्वामी जी पै आयौ।"

राजा नागरीदास ने किसी परंपरागत अनुश्रुति के आधार पर ही उक्त कथन किया होगा; अतः यह किंवदंती काफी पुरानी

स्वामी हरिदास जी और तानसेन सहित अकबर

मालूम होती है। ऐसा ज्ञात होता है, चाहें तानसेन स्वामी जी का विधिवत् शिष्य न हो; किंतु उसने संगीत के क्षेत्र में किसी समय उनसे कुछ प्राप्त अवश्य किया था।

यह घटना किस काल की हो सकती है, इसके संबंध में आचार्य वृहस्पति का कथन है—

"हमें ऐसा लगता है कि सन् १५१८ (सं० १५७५) में ग्वालियर का किला विक्रमाजीत के हाथ से निकल जाने के पश्चात तानसेन वृंदाबन आकर कुछ दिनों के लिए श्री स्वामी जी के चरणों में बैठा हो, परंतु उसके दरबारी संस्कारों ने उसे वहाँ अधिक न टिकने दिया हो[१]।"

स्वामी जी और अकबर—

ऐसी किंवदंती है, तानसेन द्वारा स्वामी हरिदास के अद्भुत संगीत की प्रशंसा सुन कर सम्राट अकबर को उनसे मिलने की प्रबल उत्कंठा हुई थी। स्वामी जी की गायन कला उनके उपास्य श्यामा-कुंजबिहारी जी के लिए ही अर्पित थी। वे किसी भी दशा में किसी राजा-महाराजा को अपना गायन सुनाना पसंद नहीं करते थे। कहते हैं, अपनी उत्सुकता की पूर्ति के लिए सम्राट अकबर छद्म वेश में तानसेन के साथ वृंदाबन गये थे। वहाँ पर उन्हें स्वामी जी से गायन सुनने का सुयोग प्राप्त हुआ और वे उसके दिव्य सौंदर्य पर मुग्ध हो गये।

अब से दो शताब्दी पूर्व रचित 'पद प्रसंग माला' में भक्तवर राजा नागरीदास ने इस घटना का इस प्रकार उल्लेख किया है—

---

१. संगीत (हरिदास अंक) पृ० ११

पहलै तानसैन गायौ। विनती करी महाराज, कछु आपु हू
ोलियै। तब श्री हरिदास जी अलापचारी करी [मलार राग की]। चैत
साख कौ महीना हतौ। तब ताही बेर घटा घुमड़ि आई। मोर बोलनि
ागे। तब नयौ बनाइ विष्न पद गायौ। तब ताही बेर वर्षा होन लागी।
ो वह पद—ऐसी रितु सदा-सर्वदा जो रहै, बोलत मोरनि[१]।

यहाँ यह उल्लेखनीय है, स्वामी जी द्वारा गाये हुए उक्त
द को नागरीदास जी ने 'विष्णुपद' कहा है; यद्यपि स्वामी जी की
चनाओं को साधारणतः 'ध्रुपद' कहा जाता है। अकबर-हरिदास
ेंट का उल्लेख किसी समकालीन इतिहासकार ने नहीं किया है।
सका लिखित विवरण सर्व प्रथम नागरीदास कृत 'पद प्रसंग
ाला' में और फिर किशोरदास कृत 'निज मत सिद्धांत' में
मलता है। ब्रज के लोक-जीवन में और स्वामी हरिदास जी की
शष्य-परंपरा में इस घटना की बहुत पुराने समय से प्रसिद्धि चली
ा रही है; अतः समकालीन ऐतिहासिक प्रमाण न मिलने पर भी
सकी प्रामाणिकता में संदेह नहीं किया जा सकता है।

उस महत्त्वपूर्ण घटना के यथार्थ काल का ज्ञान नहीं होता
; किंतु सामयिक घटनाओं की संगति से उसका निश्चय किया
ा सकता है। तानसेन सं० १६१९-२० में अकबरी दरबार में
या था। सम्राट अकबर सं० १६३२ तक संत-महात्माओं से
धिक मिला करते थे। इस प्रकार इस घटना का निश्चित काल
० १६२० से १६३२ के बीच का ही हो सकता है।

वार्ता साहित्य से ज्ञात होता है, तानसेन से सूरदास का
क पद सुन कर सम्राट अकबर महात्मा सूरदास से मिले थे;
ार उनके गायन से अत्यंत प्रभावित हुए थे[२]। अकबर-सूरदास

---

१. यह पद 'केलिमाल' सं० ८९ का है।

२. अष्टसखान की वार्ता, पृ० ११५

भेंट का भी निश्चित काल ज्ञात नहीं होता; किंतु हमने सिद्ध किया है कि उक्त भेंट सं० १६२३ में मथुरा में हुई थी[1]। सं० १६२३ में सम्राट अकबर का मथुरा-वृंदावन जाना प्रामाणित है; अतः यह सर्वथा संभव है कि उसी समय वे स्वामी हरिदास से भी वृंदाबन में मिले हों। श्री ग्राउस ने इस घटना का काल सं० १६३० अनुमानित किया है।

इस घटना से संबंधित कुछ चित्र भी मिलते हैं, जो किशनगढ़ नरेश के चित्र-संग्रह में, वृंदाबन के देवालयों में और दिल्ली तथा अन्य स्थानों के संग्रहालयों से सुरक्षित हैं। ये चित्र १८ वीं शती अथवा उसके बाद के हैं। इनमें स्वामी हरिदास जी तानसेन और अकबर के समक्ष गाते हुए चित्रित किये गये हैं। स्वामी जी के सामने तानसेन बैठा हुआ है और अकबर किसी चित्र में बैठे हुए और किसी में खड़े हुए दिखाये गये हैं।

इन चित्रों में सम्राट अकबर की आयु सबसे अधिक, उससे कम स्वामी हरिदास की और सबसे कम तानसेन की चित्रित की गई है। वास्तव में स्वामी हरिदास सबसे अधिक आयु के थे। उनसे कम आयु तानसेन की और सबसे कम सम्राट अकबर की थी। इस प्रकार ये चित्र उक्त घटना का समर्थन तो करते हैं; किंतु अपने अशुद्ध चित्रण के कारण उसकी प्रामाणिकता में संदेह भी उत्पन्न कर देते हैं। ऐसा ज्ञात होता है, इन चित्रों के निर्माण के समय इनके निर्माताओं की जानकारी में अकबर-हरिदास भेंट की किंवदंती तो थी, किंतु उनके समक्ष कोई प्राचीन चित्र नहीं था। उन्होंने अपने सीमित ऐतिहासिक ज्ञान से उस प्रसिद्ध किंवदंती का चित्रण मात्र कर दिया था; जब कि उसमें चित्रित आकृतियों को वे यथार्थ स्वरूप प्रदान नहीं कर सके थे।

---

१. अष्टछाप परिचय, पृ० १२८, १३६। सूर निर्णय, पृ० ६१

स्वामी जी और हरिदास डागुर—

कतिपय संगीतज्ञों की यह धारणा है कि स्वामी हरिदास और हरिदास डागुर दोनों एक ही व्यक्ति थे। गांधर्व विद्यालय नई दिल्ली के श्री विनयचंद्र मौद्गल्य ने ध्रुपद की चार बानियों में से एक 'डागुरी बानी' के गायक समझने के कारण स्वामी हरिदास को ही 'हरिदास डागुर' बतलाया है[१]। संगीतज्ञों के अतिरिक्त कुछ साहित्यिक विद्वानों का भी ऐसा ही मत जान पड़ता है। श्री हरिहरनिवास द्विवेदी स्वामी हरिदास जी को हरिदास डागुर तो मानते ही हैं, साथ ही उनकी डागुरी बानी का 'रहस्य' बतलाते हुए उसे ग्वालियर के राजा डूंगरेन्द्र सिंह से संबंधित भी सिद्ध करते हैं[२]। श्री नर्मदेश्वर चतुर्वेदी ने स्वामी जी की कतिपय रचनाओं के साथ हरिदास डागुर तथा अन्य हरिदासों की रचनाओं का संमिश्रण कर उन सबको एक ही व्यक्ति की कृतियाँ समझा है[३]। वास्तव में ये सब भ्रमात्मक बातें हैं।

श्री मौद्गल्य ने स्वामी जी को 'आधुनिक हिंदुस्तानी संगीत पद्धति का प्रवर्त्तक' बतलाते हुए कहा है कि 'आधुनिक काल में प्रचलित ख्याल गायन का आधार भी उनके समय के ध्रुपद ही हैं।' उनकी यह धारणा स्वामी जी और हरिदास

---

१. साप्ताहिक हिंदुस्तान (१ जुलाई १९५६) में प्रकाशित—
श्री विनयचंद्र मौद्गल्य का लेख, "भारतीय संगीत गगन के सूर्य बाबा हरिदास।"

२. मध्यदेशीय भाषा (ग्वालियरी) पृ० ८६-८७

३. संगीतज्ञ कवियों की हिंदी रचनाएँ, पृ० ५१-५७
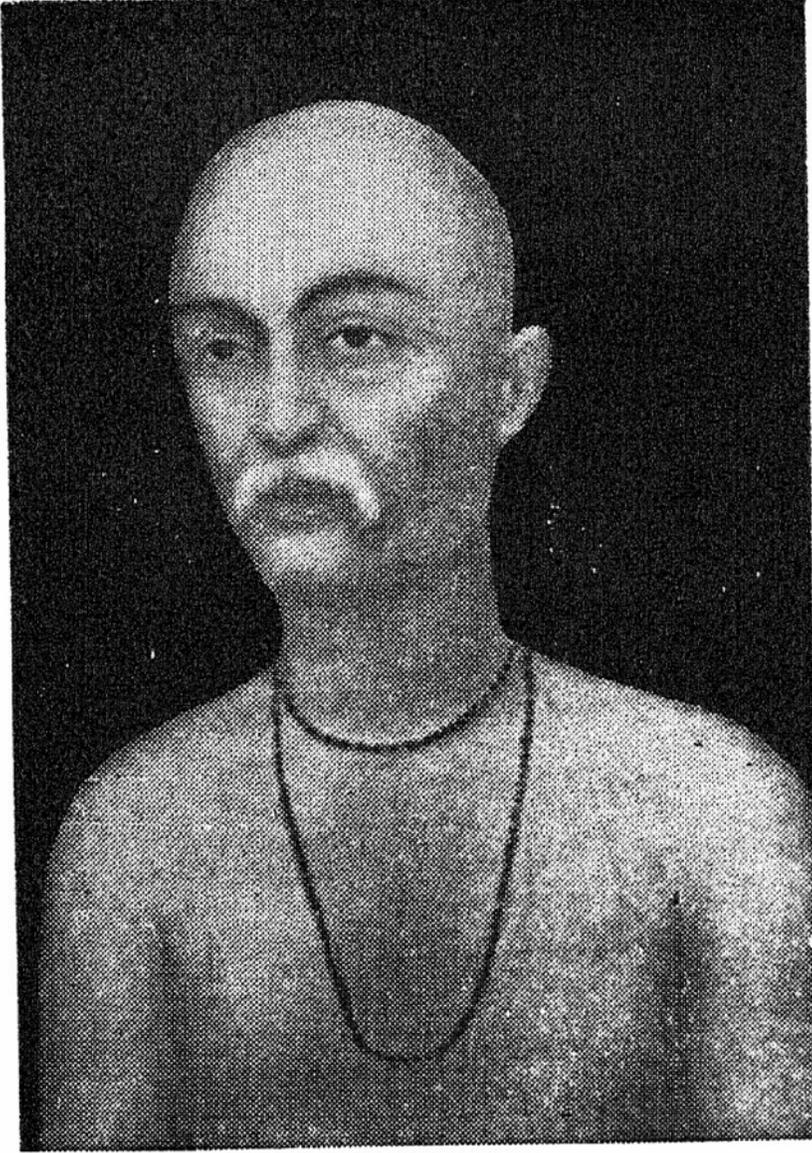
स्वामी हरिदास (डागुर)

[कलकत्ता की श्री प्रेमचंद्र बोराल आर्ट गैलरी में इसे स्वामी हरिदास का प्रामाणिक चित्र माना जाता है। इसकी आकृत्ति, विशेषकर मूँछों के कारण, स्वामी जी के संप्रदाय में प्राप्त चित्रों से भिन्न ज्ञात होती है। संभवतः यह हरिदास डागुर का चित्र है]

डागुर दोनों के संगीत-महत्व को मिला देने की भूल पर आधारित है। स्वामी जी निश्चय ही युग-प्रवर्तक संगीतशास्त्री थे; किंतु उन्हें 'आधुनिक हिंदुस्तानी संगीत पद्धति का प्रवर्त्तक' बतलाना कदाचित उपयुक्त नहीं है। श्री द्विवेदी जी के मत की निरर्थकता तो इसी से सिद्ध है कि जब ध्रुपद की गायकी राजा मानसिंह तोमर के समय से ही प्रचलित हुई मानी जाती है, तब उसकी एक विशिष्ट शैली 'डागुरी बानी' का संबंध राजा मानसिंह से कई पीढ़ी पहले होने वाले राजा डूँगरेन्द्र सिंह से कैसे हो सकता है! श्री चतुर्वेदी जी ने 'राग कल्पद्रुम' में उपलब्ध हरिदास नामक सभी संगीतज्ञों की रचनाएँ एक साथ संकलित कर जो भ्रम पैदा कर दिया है, उसका अनुभव वे स्वयं कर सकते हैं।

ध्रुपद की चार 'बानी' कही जाती हैं। उनकी गायकी में शुद्ध ध्रुपद की अपेक्षा क्या-क्या विशेषताएँ अथवा भिन्नताएँ हैं, इनके स्पष्टीकरण की बात तो बहुत दूर की है; अभी तक तो उनके नामों और उन्हें प्रचलित करने वालों के संबंध में ही काफी विवाद है। तानसेन के एक ध्रुपद में उनके नाम और महत्व का इस प्रकार उल्लेख मिलता है—

बानी चारौं के व्यौहार सुनि लीजे हो गुनी जन,
तब पावैं यह विद्या सार।
राजा गुबरहार, फौज खंडहार, दीवान डागुर, बक्सी नौहार[1]॥ × ×

इससे ऐसा जान पड़ता है कि तानसेन के समय में ही ध्रुपद की चारों बानियाँ प्रचलित हो गई थीं। उनके नाम गुबरहारी, खंडहारी, डागुरी और नौहारी थे। उनमें गुबरहारी सर्वोत्तम मानी जाती थी। उसके उपरांत क्रमशः खंडहारी, डागुरी

१. संगीत-सम्राट तानसेन, पृ० ६४, ध्रुपद सं० १३३

और नौहारी का महत्व था। इसमें प्रकारांतर से यह भी व्यंजित होता है कि तानसेन 'गुबरहारी' बानी का गायक था। सन् १२७२ हिजरी (सं० १६५२ वि०) में लिखित 'मग्रदन्-उल-मूसिकी' नामक संगीत ग्रंथ (पृ० २३३) में उसके लेखक महम्मद करम इमाम ने तानसेन को 'गौरारी' (गुबरहारी) बानी का ही गायक बतलाया है। उसने यह भी लिखा है कि मकरंद के पुत्र और हरिदास फकीर के शिष्य गौर ब्राह्मण तानसेन से 'गौरारी बानी', श्रीचंद (डागुर) राजदूत से 'डागुरी बानी' और रुहेलखंड के समीप खंडहर स्थान के निवासी राजपूत राजा समोखनसिंह से 'खंडहारी बानी' का प्रचार हुआ था। इसमें हरिदास डागुर का नामोल्लेख नहीं है और न स्वामी हरिदास से ही डागुरी बानी का संबंध बतलाया गया है। जो लोग तानसेन को हरिदास डागुर का शिष्य कहते हैं, उनका कथन तो बिलकुल निराधार मालूम होता है; क्यों कि प्राचीन उल्लेखों में कहीं भी तानसेन को डागुरी बानी का गायक नहीं बतलाया गया है।

कुछ लोग उक्त बानियों के नाम क्रमशः डागुरी, पागुरी, ढुंढहारी और खंडहारी कहते हैं और उनके प्रचारकों के नाम भी भिन्न प्रकार से बतलाते हैं। वास्तव में ये सब मन गढंत बातें हैं; जिनका कोई प्राचीन और विश्वसनीय आधार नहीं है। ध्रुपद की बानियों के रूप से यदि उसके गायन की चार विभिन्न शैलियाँ थीं, तो अब उनके विभिन्न रूपों को स्पष्ट करने वाला कदाचित कोई भी संगीतज्ञ नहीं है।

वर्तमान काल में कतिपय ध्रुपदिया अपने को डागुर तथा अपनी बानी को डागुरी बतलाते हैं। वे अपनी कुल-परंपरा का संबंध कालिदास डागुर अथवा हरिदास डागुर से मानते हैं।

श्री शिवहरित ने हरिदास डागुर और उनकी 'डागुरी बानी' की परंपरा बतलाते हुए लिखा है—

डागुरी वाणी के सबसे पहले गायक बाबा हरिदास डागुर थे। वे स्वामी हरिदास के समकालीन और उन्हीं की तरह उच्च कोटि के गायक और भक्त थे। कृष्ण की लीला भूमि वृंदावन में ही उनका निवास स्थान था। ध्रुपद में बँधे हुए उनके बहुत से पद भी हैं[1]।

उसी उल्लेख में कहा गया है, बाबा हरिदास डागुर के पश्चात् उस परंपरा में स्वामी ब्रह्मानंद, बाबा सत्यदेव और बाबा गोपालदास हुए। बाबा गोपालदास के पुत्र को मुसलमान बना लिया गया, जो बाद में उस्ताद बैरामखाँ के नाम से विख्यात गायक हुआ। बैरामखाँ के दो पुत्र सरदारखाँ और महम्मदखाँ हुए। महम्मदखाँ के पुत्र जाकिरउद्दीनखाँ और अल्लाबंदेखाँ थे। वे डागुर बंधु कहलाते थे और साथ-साथ गाते थे। अल्लाबंदे खाँ के पुत्र नसीरुद्दीन खाँ के चार पुत्रों में से दो बड़े मोइनुद्दीन खाँ डागुर और अमीनुद्दीन खाँ डागुर हैं; जो समस्त देश में 'डागुर बंधु' के नाम से प्रसिद्ध हैं[2]। इस घराने में सदा से नामी गायक हुए हैं, जिन्होंने पुराने समय से अब तक ध्रुपद की गायकी को जीवित रखा है।

उपर्युक्त उल्लेख से ज्ञात होता है कि डागुरी बानी के प्रचारक बाबा हरिदास डागुर का स्वामी हरिदास जी से कोई संबंध नहीं है। दोनों की रचनाएँ भी भाषा, भाव, विषय और नाम-छाप की दृष्टि से सर्वथा भिन्न हैं। स्वामी हरिदास की

---

१. साप्ताहिक हिंदुस्तान (२२ सितंबर १९५७) में प्रकाशित—
श्री शिवहरित का लेख—'ध्रुपद की डागुर वाणी के गायक।'

२. साप्ताहिक हिंदुस्तान (२२ सितंबर १९५७)

रचनाओं में जहाँ उनके उपास्य श्यामा-कुंजबिहारी की नित्य बिहार लीलाओं का गायन हुआ है, वहाँ हरिदास डागुर की रचनाओं में विभिन्न देवी-देवताओं की स्तुति, नादगढ़ के विचित्र रूपक और साधारण नायिकाओं का कथन मिलता है।

हमने इस पुस्तक में अन्यत्र हरिदास डागुर की कतिपय रचनाओं का संकलन किया है। इससे ज्ञात होगा कि उनकी रचनाएँ स्वामी जी की रचनाओं से कितने भिन्न प्रकार की हैं। श्री शिवहरित के पूर्वोक्त उल्लेख में हरिदास डागुर को स्वामी हरिदास जी का समकालीन बतलाया गया है; किंतु हमारे मतानुसार हरिदास डागुर परवर्ती थे। श्री वी. एन. निगम ने शाहजहाँ के दरबारी गायक जगन्नाथ कविराय का एक ध्रुपद उद्धृत किया है[1]। उसमें कतिपय विख्यात संगीतज्ञों का क्रमानुसार नामोल्लेख हुआ है। यदि वह क्रम कालानुसार है, तब स्वामी हरिदास जी के समकालीन तानसेन से ही नहीं, वरन् धौंधी से भी हरिदास डागुर परवर्ती सिद्ध होते हैं। वह ध्रुपद इस प्रकार है—

सर्व कला संपूरन, मति अपार विस्तार,
नाद कौ नायक 'बैजू' 'गौपाल'।
ता पाछै 'बक्सू' बिहँसि बस कीन्हौं, 'महमू' महि मंडल में
उदोत चहुँचक भरौ, डिढ़ विद्या निधान,
सरस धरु 'करन' डिढ़ ताल॥
'भगवंत' सुर भरन, 'रामदास' जसु पायौ,
'तानसेन' जगतगुरु कहायौ, 'धौंधी' बानी रसाल।
सुरति विलास 'हरिदास डागुर' जगन्नाथ कविराय,
तिनके पग परसिवे कौं स्याम राम रंग लाल॥

१. संगीत (फरवरी, १९५९), हरिदास अंक, पृ० ३०

यहाँ ये प्रश्न उपस्थित होते हैं, क्या स्वामी हरिदास जी और हरिदास डागुर एक ही व्यक्ति थे और स्वामी जी की प्रामाणिक रचनाओं की पहिचान क्या है ? हमारे मत से हरिदास डागुर स्वामी जी से पृथक् दूसरे संगीतज्ञ थे। उनकी रचनाएँ स्वामी जी की रचनाओं के साथ मिलाना उचित नहीं है। इस संबंध में हम विस्तार पूर्वक आगे लिख रहे हैं।

जहाँ तक स्वामी जी की प्रामाणिक रचनाओं की बात है, उसकी मुख्य कसौटी सांप्रदायिक मान्यता है। संप्रदाय में स्वामी जी की प्रामाणिक कृतियों के रूप में केवल १२८ ध्रुपद मान्य हैं, जो 'सिद्धांत' और 'केलिमाल' नामक रचनाओं में संकलित मिलते हैं। प्रामाणिक ध्रुपदों की एक मोटी सी पहिचान यह कही जाती है कि उनमें 'श्री हरिदास के स्वामी श्यामा-कुंजबिहारी' की छाप मिलती है। इस छाप के अनेक ध्रुपद उक्त रचनाओं में हैं। किंतु यह छाप प्रामाणिक ध्रुपदों की एक मात्र कसौटी नहीं है; क्यों कि उक्त रचनाओं में बिना इस छाप के भी ध्रुपद हैं और कुछ इस छाप के ऐसे भी हैं, जो उक्त रचनाओं में नहीं मिलते हैं। ऐसे कतिपय पद हमने 'केलिमाल' के बाद दिये हैं। उनके विषय में निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे प्रामाणिक हैं या नहीं।

'सिद्धांत' और 'केलिमाल' में जो १२८ ध्रुपद हैं, उनमें चाहें 'श्री हरिदास के स्वामी श्यामा-कुंजबिहारी' की छाप है या नहीं, वे सांप्रदायिक मान्यता के अनुसार सभी प्रामाणिक हैं। उनका यह क्रम परंपरागत है और वह सभी हस्त लिखित पोथियों में एक सा मिलता है। इस राग-क्रम के अनुसार 'सिद्धांत' के १८ ध्रुपदों के राग क्रमशः इस प्रकार हैं—

विभास ४, बिलावल १, आसावरी ७, कल्याण ६ =कुल १८

'केलिमाल' के ११० ध्रुपदों के राग क्रमशः इस प्रकार मिलते हैं—

कान्हरा ३०,	केदारा २२,	कल्याण १२,	सारंग ११,
विभास १०,	बिलावल २,	मलार ८,	गौड़ २,
बसंत ५,	गौरी ६,	नट २	=कुल ११०

इस राग-विभाजन की प्रामाणिकता के समर्थन में रचे हुए कतिपय कवित्त भी मिलते हैं[1]। इनमें बतलाया गया है कि उक्त पदों के अतिरिक्त जो भी पद मिलें, उन्हें 'भेंट' (प्रक्षेप) के जानना चाहिए। इससे यह समझा जा सकता है कि स्वामी जी के प्रामाणिक ध्रुपद १२८ ही हैं।

---

१. अनन्य नृपति स्वामी हरिदासजू के पद,
रस अमल बीज बकुला न जासु में।
प्रथम राग 'कान्हरा' में तीस(३०) सुख-ईस बने,
बाईस(२२) 'केदारा' मांझ सरस रस रास में।।
बारह(१२) 'कल्यान', ग्यारह(११) 'सारँग' में सुर-बंधान,
दस(१०) हैं 'विभास', द्वै(२) 'बिलावल' प्रकास में।
आठ(८) हैं 'मलार', द्वै(२) 'गौड़', पाँच(५) हैं 'बसंत',
'गौरी' छह(६), 'नट' जुग(२) छवि-पास में ।।१।।
इन राग-रागनी में पद महा भीने रस,
हैं समरस के श्री बिहारिन-बिहारी जू।
स्वामी हरिदास जू विलास रास-रस ही के,
भाव लै दिखाई रीति, अति ही न्यारी जू ।।
पढ़ें-सुनें-बिचारें भाव-सागर में डूबि,
मरजीवा पैठ लावें, बिहारै प्यारी जू।
और कोऊ पद होय, ताहि भेंट जानि लीजै,
जोजै पावें पद जुग 'नागरि' बिहारी जू ।।२।।
—श्री केलिमाल की फल स्तुति

उपासना और भक्ति—

स्वामी हरिदास जी के साहित्य और संगीत, जिनके विषय में पहले लिखा जा चुका है, अत्यंत महत्वपूर्ण होते हुए भी उनकी जीवन-चर्या के प्रधान अंग नहीं थे। उनके जीवन का प्रमुख उद्देश्य श्री श्यामा-कुंजबिहारी के नित्य बिहार का स्पष्टीकरण था; जिसे उन्होंने साहित्य और संगीत के माध्यम से किया था। इस प्रकार नित्य बिहार उनकी उपासना और भक्ति का लक्ष्य था और साहित्य एवं संगीत उनके साधन मात्र थे। उपासना और भक्ति को रसिकतापूर्ण कलात्मकता का कलेवर प्रदान कर उन्होंने रसिक भक्तों के लिए एक विशिष्ट भक्ति मार्ग का प्रकटीकरण किया था। यह उनकी धार्मिक जगत् के लिए एक महत्त्पूर्ण देन थी।

स्वामी जी की उपासना सखी (गोपी) भाव की थी, और उनकी भक्ति वैराग्यमूलक माधुर्य भाव की। इस प्रकार उनकी उपासना और भक्ति में चरम सीमा की रसिकता होते हुए भी वैराग्य की प्रधानता है। राग और विराग का यह अद्भुत समन्वय स्वामी जी के भक्ति मार्ग की विलक्षणता है। उनका 'नित्य बिहार' तत्व इसीलिऐ अन्य वैष्णव संप्रदायों के भक्ति तत्व से विलक्षण कहा गया है।

स्वामी हरिदास जी की उपासना पद्धति के व्याख्याता श्री भगवत रसिक का कथन है कि अन्य संप्रदायों का भक्ति-ज्ञान तो गंगा जल के समान है, जिसे किसी भी अनुयायी रूपी पात्र में रखा जा सकता है। किंतु ललिता सखी रूप स्वामी हरिदास का उपासना तत्व सिंहनी के दूध के समान है, जो या तो संस्कार प्राप्त सिंह-शावक के उदर में पच सकता है,

अथवा उसे स्वर्ण पात्र के समान तपे हुए साधक ही ग्रहण कर सकते हैं। इनके अतिरिक्त अन्य के लिए वह अहितकर ही हो सकता है[1]।

स्वामी जी की इस विशिष्ट उपासना और भक्ति का आधार नित्य बिहार में तल्लीन श्यामा-कुंजबिहारी की युगल जोड़ी है। वह घन-दामिनि के समान एक दूसरे से पृथक् न होने वाली, सहज, स्वाभाविक और चिरंतन है। वह इसी प्रकार सदा थी, अब भी है, और आगे भी रहेगी[2]। उनके नित्य बिहार में पल भर का भी व्यवधान नहीं होता है। व्यवधान की कल्पना ही असंगत है। जहाँ नित्य बिहार है, वहाँ चिरंतन रस का अखंड साम्राज्य है।

नित्य बिहार की चिरंतन रसात्मकता के कारण श्यामा-कुंजबिहारी का युगल स्वरूप स्वयं रस रूप है—'रसो वैसः।' इसीलिए स्वामी जी की उपासना वस्तुतः 'रस' की है। उनकी मान्यता के अनुसार 'रस' उपास्य है, और उसके उपासक

---

१. संप्रदाय नवधा भगति, वेद सुरसरी नीर।
ललिता सखी उपासना, ज्यों सिंहिन कौ छीर॥
ज्यौं सिंहिन कौ छीर, रहै कुंदन के बासन।
कै बच्चा के पेट, और घट करै बिनासन॥
'भगवत' नित्य बिहार, परौ सबही कौ परदा।
रहैं निरंतर पास, रसिकवर सखी संप्रदा॥

—**भगवत रसिक की वाणी**

२. (माई री) सहज जोरी प्रगट भई जु,
रंग की गौर-स्याम घन-दामिनि जैसें।
प्रथम हुती, अबहु, आगै हू रहि है, न टरि है तैसे॥

—**केलिमाल, पद सं० १**

'रसिक'। वे स्वयं रसिक-शिरोमणि कहलाते थे। उनकी रसिकता की छाप उस समय के भक्त-समाज पर ऐसी दृढ़ता से लगी थी कि उन सब ने एक स्वर से उनका गुण-गान किया है। भक्तमाल के रचयिता और टीकाकार क्रमशः नाभा जी और प्रियादास जी ने उनकी 'रसिक' छाप का इस प्रकार उल्लेख किया है—

नृपति द्वार ठाड़े रहे, दरसन आसा जासु को।
आसुधीर उद्योत कर, 'रसिक छाप' हरिदास की॥ (नाभा जी)

स्वामी हरिदास रस-रास को बखान सकैं,
'रसिकता छाप' जोई जाप मध्य पाइयै॥ (प्रियादास)

राधावल्लभीय संप्रदाय के प्रसिद्ध भक्त-कवि श्री ध्रुवदास जी का कथन है—

रसिक अनन्य हरिदास जू, गायौ नित्य बिहार।
सेवा हू में दूर किये, बिधि-निषेध जंजार॥

स्वामी जी के समकालीन और सहयोगी श्री हरिराम जी व्यास ने तो यहाँ तक कहा है कि उनके समान रसिक पृथ्वी पर और आकाश में न अब तक हुआ और न आगे ही होगा—

ऐसौ रसिक भयौ ना ह्वै है, भुव मंडल आकास।

व्यास जी के कथन का समर्थन करते हुए स्वामी जी की परंपरा के विरक्त संत श्री पीतांवरदास और श्री ललितकिशोरी दास का कहना है—

रसिकन के रस दैन कों, प्रगटे रसिकानंद।
आगे भए न होंगे, अद्भुत आनँदकंद॥ (पीतांवरदास)

व्यास रसिक रसिकन कहै, एक रसिक हरिदास।
दूजौ रसिक न देखियैं, भुव मंडल आकास॥ (ललितकिशोरी)

ब्रज के सभी भक्ति-संप्रदायों के महात्माओं ने राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ाओं का गायन किया है; किंतु स्वामी जी की विशिष्टता उनके नित्य-बिहार के गायन में है। इसका उल्लेख श्री रूपसखी की वाणी में इस प्रकार हुआ है—

रूप-सनातन ब्रज कह्यौ, वृंदाबन हरिबंस।
नित्य बिहार उपास में, श्री हरिदास प्रसंस॥

ब्रज के अवतार काल में भी राधा-कृष्ण की केलि-क्रीड़ा थी; किंतु नंद-यशोदा, सखी-सखा आदि प्रिय जनों और कंसादि दुष्ट जनों के साथ उनकी अन्य लीलाएँ भी हुई थीं। उनमें कृष्ण को राधा से पृथक् भी होना पड़ता था। स्वामी जी की नित्य-विहार विषयक मान्यता में उक्त लीलाओं का स्थान नहीं है; अतः वहाँ पल भर के लिए भी प्रिया-प्रियतम की पृथक्ता अस्वीकृत है। स्वामी जी ब्रज लीलाओं के प्रति इतने उदासीन थे कि उन्होंने राधा जी को 'वृषभानु-नंदिनी' तक नहीं कहा; बल्कि अपनी रचनाओं में सर्वत्र उन्हें श्यामा, प्यारी, लाड़िली आदि नामों से ही याद किया है। कुछ विद्वान उनके एक पद "हमारौ दान मार्‌यौ इनि[1]" में ब्रज लीला का भाव पाते हैं, किंतु उसमें भी वस्तुतः निकुंज-लीला का ही कथन है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि स्वामी जी की उपासना और भक्ति का आधार कोई विशिष्ट अवतार नहीं है; बल्कि सब अवतारों के अवतारी नित्य बिहार में निरंतर तल्लीन श्री श्यामा-कुंजबिहारी हैं। श्री बिहारिनदास ने कहा है—

श्री कुंजबिहारी सर्वस्व-सार। × ×
अंस-कला सब अवतारनि कौ, अवतारी भरतार॥

---

१. यह पद केलिमाल, सं० ६२ का है।

ऐसे सर्वोपरि परम तत्त्व रस रूप श्री श्यामा-कुंजबिहारी का नित्य बिहार किसी भी देव-पितर को तो क्या, लक्ष्मीपति विष्णु के लिए भी दुर्लभ है। उसमें राम और कृष्ण का प्रवेश भी नहीं हो सकता है। वैकुंठ वासी लक्ष्मी-नारायण और ब्रज-वासी राधा-कृष्ण भी उसमें प्रवेश पाने के लिए ललचाते हैं! श्री बिहारिनदास का कथन है—

'बिहारिनदास' बिहार कों, लछिमीपति ललचाँहि।
देव-पितर लीएँ फिरैं, ह्याँ राम-कृष्न न समाँहि॥
याही तें दुर्लभता सबकों, लछिमीपति ललचात।
जद्यपि राधा-कृष्ण बसत ब्रज, बिनु बिहार बिललात॥

नित्य बिहार के लिए लक्ष्मी-नारायण ललचावें और उसमें राम का प्रवेश न हो, यह बात तो समझ में आ सकती है; किंतु उसमें कृष्ण का भी प्रवेश न हो और राधा-कृष्ण भी उसके लिए ललचावें—यह वास्तव में बड़ी विलक्षण बात मालूम होती है! यही विलक्षणता स्वामी हरिदास जी की उपासना और भक्ति की विशिष्टता है।

श्री भगवत रसिक ने इसका श्रेणीबद्ध उल्लेख करते हुए कहा है—

प्रथम महातम प्रकृति, ज्ञान-रवि तहाँ प्रकासै।
दूजै ब्रह्म प्रकास, कोटि सूरज सम भासै॥
तीजै पंकजनाभि—रमा वैकुंठ निवासी।
चौथे दसरथ-सुवन राम, गोपुर के बासी॥
पाँचै ब्रज के गोप, नंद आदिक सब गोपी।
छठयै सखी-समाज, करैं लीला-रस ओपी॥
'भगवत' सतयैं आवरन, करहिं केलि राधारवन।
सर्वोपरि सर्वेस-गुरु, रसिकराय मंगल भवन॥

स्वामी जी की उपासना और भक्ति की प्राप्ति के लिए साधक को कितनी साधनाएँ करना आवश्यक होता है; इस संबंध में भी भगवत रसिक जी ने बतलाया है—

प्रथम सुनै भागौत, भक्त मुख भगवत बानी ।
दुतिय अराधै भक्ति, व्यास नव भाँति बखानी ।।
तृतीय करै गुरु समुझि, दक्ष सर्वज्ञ रसीलौ ।
चौथे होय विरक्त, बसै बन राज जसीलौ ।।
पाँचै भूलै देह निज, छठै भावना रास की ।
सातै पावै रीति-रस, श्री स्वामी हरिदास की ।।

श्री बिहारी जी का प्राकट्य—

स्वामी जी सिद्ध कोटि के महात्मा थे । वे मानसी उपासना में तल्लीन रहते हुए अपने उपास्य श्यामा-कुंजबिहारी की दिव्य लीलाओं का निरंतर रसास्वादन किया करते थे । साधना और भक्ति की परमोच्च अवस्था को प्राप्त होने से उन्हें स्वयं के लिए किसी 'देव-विग्रह' को आवश्यकता न थी; किंतु भक्तों की सुविधा के लिए उन्होंने मार्गशीर्ष शु० ५ को निधुबन में श्री बिहारी जी की दिव्य प्रतिमा का प्राकट्य किया था। वह शुभ तिथि 'बिहार-पंचमी' के नाम से प्रसिद्ध है । निधुबन में जहाँ से श्री बिहारी जी का प्राकट्य हुआ था; वह पावन स्थल श्रद्धालु भक्तों के लिए सदा से दर्शनीय और वंदनीय रहा है ।

इस प्रकार स्वामो जो ने उपासना और भक्ति के सार-तत्व 'नित्य बिहार' रूपी परम गोप्यस्थल की कुंजी सभी साधक भक्तों के लिए सहज ही सुलभ कर दी थी । श्री बिहारिनदास जी कहते हैं—

कूँची नित्य बिहार की, हरिदासी के हाथ ।
सेवत साधक सिद्ध सब, जाचत-नावत माथ ।।
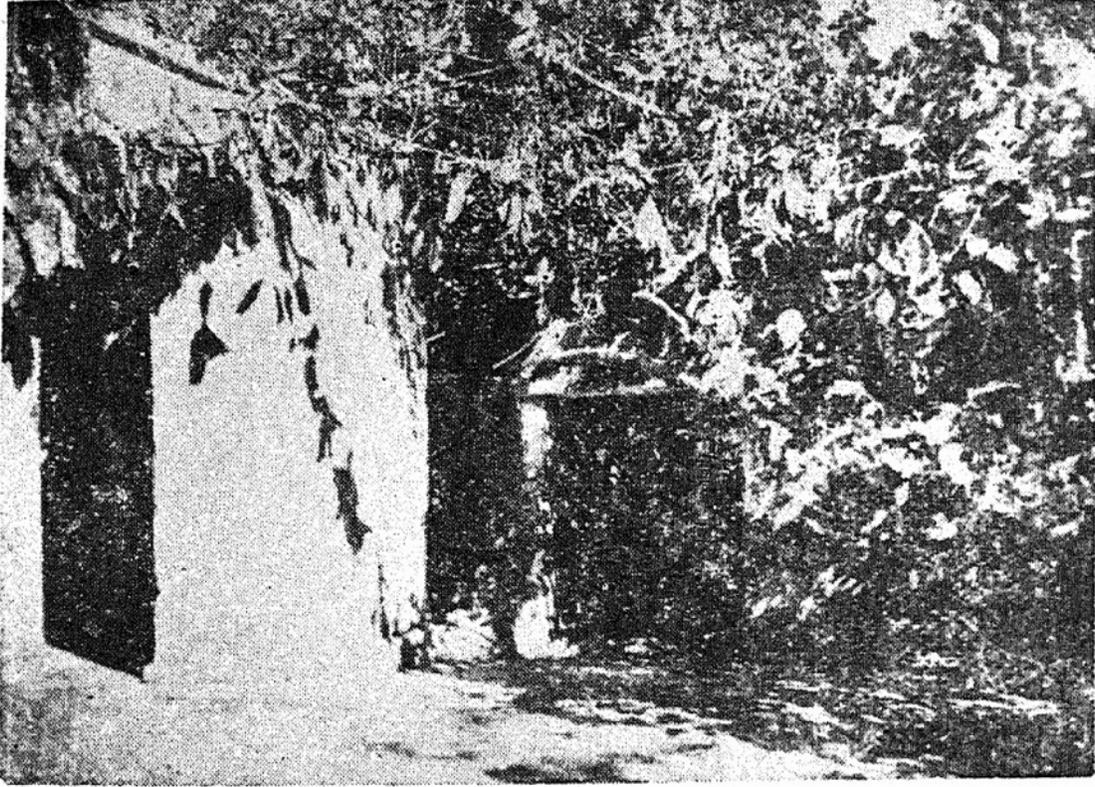
निधिबन (वृंदावन) में श्री बिहारीजी का प्राकट्य-स्थल

श्री बिहारीजी के प्राकट्य-स्थल का नवीन स्मारक

सिद्धांत—

स्वामी जी की रचनाओं में १८ ध्रुपद 'सिद्धांत के पद' कहे जाते हैं। उनमें किसी विशेष दार्शनिक सिद्धांत का निरूपण नहीं हुआ है; वरन् ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की सामान्य बातों का ही कथन किया गया है। उनके 'केलिमाल' के पदों में श्री श्यामा-कुंजबिहारी के नित्य बिहार का वर्णन है। इनसे स्वामी जी के विशिष्ट भक्ति-तत्व का बोध होता है; किंतु उसे भी किसी दार्शनिक सिद्धांत से संबद्ध करना संभव नहीं है। स्वामी जी जैसे रसिक जनों ने अपनी उपासना-भक्ति को किसी दार्शनिकता की उलझन में नहीं उलझाया था। उन्होंने तो सेवा और उपासना में विधि-निषेध तक को जंजाल जान कर उनकी भी उपेक्षा की थी। श्री ध्रुवदास ने कहा है—

रसिक अनन्य हरिदास जू, गाऔ नित्य बिहार।
सेवा हू में दूर किय, विधि-निषेध जंजार॥

भला, जिस महानुभाव ने उपासना को भी नियमों में न बाँध कर रसिकता के राज मार्ग पर स्वच्छंद विचरण के लिए छोड़ दिया हो; वह किसी दार्शनिक सिद्धांत के पचड़े में क्यों पड़ेगा? फिर स्वामी जी जिस अलौकिक दिव्य रस के आस्वादक थे, उसमें बंधन और नियम के लिए कोई गुंजायश भी नहीं है। यहाँ पर हम स्वामी जी के तथाकथित 'सिद्धांत' के पदों से प्राप्त कतिपय तथ्य उपस्थित करते हैं—

१—भगवान् की इच्छा से सब कुछ होता है। वह जिस प्रकार चाहता है, जीव को रखता है। जीव अपनी इच्छा से कुछ भी नहीं कर सकता; क्यों कि वह पिंजड़ा के पक्षी की तरह माया-जाल में फँसा हुआ है।

२— जीव पर वश है। उसे अपनी विवशता और सांसारिक प्रपंचों की नश्वरता समझ कर भगवान् की भक्ति करनी चाहिए।

३—भगवान् की भक्ति से अधिक और कोई अधिक सुख नहीं है। अनेक बार मन उसकी ओर न लग कर इधर-उधर भटकता है; किंतु उसे वश में रखना आवश्यक है। श्री बिहारी जी ही समस्त सुखों के दाता हैं।

४— मनुष्य-जीवन का परम कर्त्तव्य हरि-भक्ति है। सदैव हरि-भजन करना चाहिए और धन की इच्छा कभी नहीं करनी चाहिए। धन तो मृत्यु के समान है।

५—भक्त बिगाड़ने वाला है, अपराधी है। भगवान् सुधारने वाले हैं, कृपालु हैं। भगवान् अपने भक्तों को होड़ लगा कर सुधारते हैं।

६—जीव को इधर-उधर न भटक कर एकाग्रता पूर्वक भगवान् का चिंतन-मनन करना चाहिए। भगवान् की इच्छा से अनहोनी बात भी संभव हो जाती है।

७—भगवान् से प्रेम और साधुओं की संगति करनी चाहिए। इससे अंतःकरण के सब पाप दूर हो जाते हैं। भगवत् प्रेम सच्चा है और सांसारिक प्रेम झूठा।

८—भगवान् की इच्छा से ही समस्त ब्रह्मांड का संचालन होता है।

९—संसार-सागर में पड़े हुए जीव लोभ और मोह के जाल में फँसे हुए हैं। भगवान् की कृपा से ही वे इससे मुक्ति पा सकते हैं।

१०—आलस्य छोड़ कर हरि-भजन करना चाहिए। मृत्यु किसी भी समय आ सकती है। उसके आते ही समस्त सांसारिक वैभव पड़ा रह जावेगा।

११—संसार के प्रति आसक्त होकर मनुष्य जन्म व्यर्थ गँवाना उचित नहीं है। हरि-भक्ति से ही जीवन की सार्थकता है।

१२—अकिंचन भाव से हरि-भक्ति करनी चाहिए और संसार से निर्लेप रहना चाहिए।

१३—संसार मिथ्या और अस्थायी है।

१४—भगवान् की माया से निर्मित यह संसार स्वप्न के समान झूठा है।

१५—सांसारिक प्रीति मिथ्या है; हरि-भक्ति ही सत्य है।

१६—सांसारिक जीवों की भाँति आस्तिक वैष्णवों को अपना कर्त्तव्य नहीं भूलना चाहिए। उन्हें अनन्यतापूर्वक हरि-भजन करना उचित है।

१७—क्षणभंगुर जीवन को व्यर्थ न खो कर उसे हरि-भजन में लगाना चाहिए।

१८—हरि-भक्ति का पाखंड नहीं करना चाहिए, क्यों कि भगवान् से कुछ छिपता नहीं है।

सिद्धांत के पदों के उपर्युक्त निष्कर्ष से ज्ञात होता है कि उनमें किसी विशिष्ट दार्शनिक तत्व का निरूपण नहीं है। उनमें ईश्वर की सर्वोपरिता, मायाबद्ध जीव की विवशता, संसार की निस्सारता और नश्वरता, भगवान् के प्रति अनन्य भक्ति की आवश्यकता आदि भक्ति मार्ग की सामान्य बातें ही बतलाई गई हैं।

स्वामी जी के पश्चात् उनकी परंपरा के आचार्यों ने भी किसी विशिष्ट सिद्धांत ग्रंथ की रचना करना आवश्यक नहीं समझा। उन्होंने अपनी 'वाणी' में स्वामी जी की नित्य बिहार

विषयक मान्यता की व्याख्या करने का ही प्रयास किया है। इसके संबंध में स्वामी जी की परंपरा के विख्यात विरक्त संत श्री विहारिनदास और श्री भगवत रसिक के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उन दोनों महानुभावों की 'वाणी' में स्वामी जी के भक्ति-सिद्धांत की विस्तृत व्याख्या करते हुए उसका स्पष्टीकरण किया गया है।

संप्रदाय—

स्वामी हरिदास जी के अनुगामी भक्तों की एक सुव्यवस्थित परंपरा है; जो हरिदासी या सखी संप्रदाय के नाम से प्रसिद्ध है। इसके अंतर्गत विरक्त संतों की और गृहस्थ गोस्वामियों की गद्दियाँ हैं। स्वामी जी की भक्ति-भावना और जीवन-चर्या से यह संभव नहीं मालूम होता है कि उन्होंने स्वयं कोई विशिष्ट संप्रदाय चलाने का प्रयास किया हो। उनके महान् व्यक्तित्व, अलौकिक कार्य-कलाप और चमत्कारिक जीवन-क्रम से प्रभावित होकर उनके भक्तों की एक मंडली स्वतः ही बन गई थी, जिसने बाद में गुरु-शिष्य परंपरा का रूप धारण कर लिया था।

ऐसा कहा जाता है, स्वामी जी के जीवन-काल में ही उनके अनेक शिष्य हो गये थे। श्री किशोरदास कृत 'निज मत सिद्धांत' में स्वामी जी के अनेक शिष्यों का विस्तारपूर्वक वर्णन किया गया है। उक्त शिष्यों में श्री विट्ठल विपुल प्रथम बतलाये गये हैं, जिन्हें स्वामी जी ने अगहन शु० ५ को मंत्र दिया था[१]।

---

१. श्रीमत विट्ठल विपुल कहँ, प्रथम शिष्य शुभ कीन।
अगहन शुक्ला पंचिमी, जन्म मंत्र हू लीन॥

—**निज मत सिद्धांत, मध्यखंड, पृ० ५६**

श्री विपुल जी के अतिरिक्त स्वामी जी के निम्न लिखित आठ शिष्यों का भी उल्लेख 'निजमत सिद्धांत' में किया गया है—

१. दयालदास, २. मनोहरदास, ३. मधुकरदास, ४. गोविंददास, ५. केशवदास, ६. श्री अनन्य, ७. मोहनदास, और ८. बलदाऊदास।

इनके साथ ही हरिराम जी व्यास के पुत्र किशोरदास जी को भी स्वामी हरिदास जी का शिष्य बतलाया गया है। वे सभी शिष्य परम विरक्त और स्वामी जी के चरण कमल के अनुरागी थे। उनके संबंध में 'निज मत सिद्धांत' में लिखा है—

करुवा खंडित गूदरी, द्वै कोपीन सुछंद।
बंधन कर्म सबै तजे, विधि-निषेध दुख द्वंद ॥

दशधा भक्ति रहत चित लागी। श्री गुरु पद पंकज अनुरागी ॥
कनक-कामिनी मल वत त्यागी। वर्णाश्रम रति मति नहिं पागी ॥
चतुर वर्ग के फल न लुभाये। नित्य बिहार सार सुनि गाये ॥

—मध्य खंड, पृ० ५७

उपर्युक्त सभी शिष्य स्वामी जी के भक्ति मार्ग के थे। उनके अतिरिक्त संगीत विषयक भी कतिपय शिष्य कहे जाते हैं। उनमें अकबरी दरबार के सुप्रसिद्ध गायक तानसेन का नाम उल्लेखनीय है। 'निजमत सिद्धांत' में तानसेन के शिष्यत्व और अकबर-हरिदास मिलन की प्रचलित अनुश्रुतियों का विस्तार पूर्वक कथन किया गया है[1]।

स्वामी जी के उन सभी शिष्यों की बात कहाँ तक प्रामाणिक है, यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता है। श्री हरिराम जी व्यास स्वामी जी के समकालीन और सहयोगी

---

१. निज मत सिद्धांत, मध्य खंड, पृ० ८९ से ९५ तक

महानुभाव थे। उन्होंने स्वामी जी की प्रशस्ति में कहा है कि उन्होंने सब के साथ समान रूप से प्रेम-व्यवहार किया था; किसी को अपना खास अनुचर नहीं बनाया[1]। उक्त कथन से स्वामी जी द्वारा शिष्य-सेवक किये जाने की बात की संगति नहीं होती है।

स्वामी हरिदास जी के अनुगामी भक्तों में श्री विट्ठल-विपुल अपनी भक्ति-भावना और वैराग्य वृत्ति के कारण अधिक प्रसिद्ध थे। वे वयोवृद्ध भी थे। स्वामी जी का देहावसान होने पर उनके श्रद्धालु भक्तों ने विपुल जी को उनका उत्तराधिकारी बनाया। विपुल जी स्वामी जी के वियोग में अत्यंत दुखी होने के कारण थोड़े ही समय तक जीवित रहे। उनका देहावसान होने पर उनके शिष्य श्री बिहारिनदास उत्तराधिकारी हुए। स्वामी जी की परंपरा में वे विख्यात आचार्य हुए हैं। ऐसा कहा जाता है, उनका जन्म स्वामी जी के आशीर्वाद से हुआ था। हरिदासी संप्रदाय की विरक्त गद्दी की गुरु-शिष्य परंपरा वस्तुतः उनके समय से ही प्रचालित हुई; जिसके अंतर्गत अनेक विख्यात संत, रसिक भक्त और रससिद्ध कवि हुए हैं।

स्वामी जी द्वारा प्रगटित श्री बिहारी जी की सेवा जगन्नाथ जी को प्राप्त हुई; जो अभी तक उनके वंशजों के अधिकार में है। जगन्नाथ जी सारस्वत ब्राह्मण और गृहस्थ थे। उनसे हरिदासी संप्रदाय की गृहस्थ गद्दी की परंपरा प्रचलित हुई। जगन्नाथ जी के वंशज 'बिहारी जी के गोस्वामी' कहलाते हैं।

स्वामी जी के निवास स्थान 'निधुबन' में दोनों ही परंपराओं के महानुभाव पर्याप्त समय तक साथ-साथ रहे आये। श्री बिहारी जी का देव विग्रह भी उनके साथ निधुबन में ही

---

१. प्रीति-रीति कीन्हीं सब ही सों, किये न खास खवास।

विराजमान था। बाद में बिहारी जी की सेवा और निधुबन के अधिकार विषयक प्रश्नों पर दोनों में मतभेद और फिर मनोमालिन्य हो गया। इसके फल स्वरूप दोनों में झगड़ा भी हुआ। अंत में विरक्त शिष्यों के तत्कालीन आचार्य ललित-किशोरीदास जी निधुबन से हट कर यमुना किनारे पर बनी हुई बाँस की टट्टियों में रहने लगे। तभी से स्वामी जी की विरक्त गद्दी के रूप में 'टट्टी संस्थान' की स्थापना हुई। आचार्य ललितकिशोरीदास के शिष्य ललितमोहिनीदास जी 'टट्टी संस्थान' के प्रथम महंत बने। उनके नाम पर यह विरक्त गद्दी वृंदाबन में 'मोहिनीदास की टट्टी' के नाम से प्रसिद्ध है। तभी से हरिदासी संप्रदाय ऐसे दो वर्गों में विभाजित हो गया, जिसमें मूल बातों पर एकता होते हुए भी सांप्रदायिक मान्यताओं तथा धार्मिक आचार-विचारों से संबंधित पर्याप्त भिन्नताएँ हैं। दोनों में हरिदासी मत की मूल आचार्या श्री ललिता जी मान्य हैं और स्वामी जी को उनका अवतार कहा जाता है। फिर भी इस मत को विरक्त-परंपरा में निंबार्क संप्रदाय के अंतर्गत और गोस्वामी-परंपरा में विष्णुस्वामी संप्रदाय से संबद्ध माना जाता है।

विरक्त-परंपरा के संत कवि श्री किशोरदास से पहिले स्वामी हरिदास जी और उनकी परंपरा के आचार्यों का क्रमबद्ध विवरण लिखित रूप में उपलब्ध नहीं था। किशोरदास जी ने परंपरागत अनुश्रुतियों और संप्रदाय में उपलब्ध सूचनाओं के आधार पर 'निजमत सिद्धांत' नामक विशद ग्रंथ की रचना की थी। इस ग्रंथके चार खंड हैं; जिनके नाम क्रमशः १. आदि खंड, २. मध्य खंड, ३. अवसान खंड और ४. आचार्य खंड हैं। इसकी रचना दोहा - चौपाई छंदों में हुई है। कहीं-कहीं पर कुछ अन्य छंद भी मिलते हैं। समस्त ग्रंथ प्रबंध शैली में लिखा गया है।

789-H 39215
49

इस ग्रंथ में स्वामी हरिदास जी के पूर्वजों से लेकर उनकी शिष्य परंपरा के आचार्यों तक का विशद वर्णन किया गया है। साथ में अनेक कथाओं और उपकथाओं सहित धार्मिक विवेचन भी है। इसकी रचना में श्री किशोरदास को जितना परिश्रम करना पड़ा, उतना श्रेय उन्हें नहीं मिल सका। इसके दो कारण हैं। पहिला कारण इसमें निंबार्क संप्रदाय के प्रचार का प्रबल आग्रह है; जो सांप्रदायिक मतभेद होने से स्वामी जी की परंपरा के दोनों वर्गों में विवाद का विषय बन गया है। दूसरा कारण इसमें तिथि-संवत् की कतिपय भूलें हैं, जो इतिहास-प्रेमियों के लिए इसका महत्व कम कर देती हैं। इन दो कमियों के रहते हुए भी इसमें स्वामी जी और उनकी शिष्य-परंपरा के संबंध मे जो बहुमूल्य सामग्री है, वह निश्चय ही महत्वपूर्ण है। इस ग्रंथ का कटु आलोचक भी स्वामी जी और उनकी परंपरा की जानकारी प्राप्त करने के लिए इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता है। यदि यह ग्रंथ न होता, तो हम हरिदासी परंपरा से संबंधित अनेक बातों से अनभिज्ञ ही रहते।

इस ग्रंथ में सर्व प्रथम हरिदासी परंपरा को दृढ़ता पूर्वक एक संप्रदाय का रूप देते हुए उसे निंबार्क संप्रदाय के अंतर्गत सिद्ध किया गया है। श्री किशोरदास के उक्त प्रयास की प्रतिक्रिया गोस्वामी परंपरा में बड़े उग्र रूप में हुई। उन्होंने इसके विरुद्ध हरिदासी मत को विष्णुस्वामी संप्रदाय के अंतर्गत बतलाना आरंभ कर दिया। वास्तव में स्वामी जी की विशिष्ट भक्ति-भावना उनकी मौलिक देन थी। वह किसी भी संप्रदाय से संबद्ध न होकर सर्वथा स्वतंत्र थी। यदि स्वामी जी किसी संप्रदाय के अंतर्गत होते, तो उनके शिष्यों को उक्त संप्रदाय की गुरु-परंपरा भी मान्य होती। ऐसी दशा में श्री बिहारिनदास जी

यह कदापि न लिखते–'गुरुन कौ गुरु श्री हरिदास आसुधीर कौ।' स्वामी हरिदास जी के पश्चात् उनकी परंपरा में जितने आचार्य हुए; उन्होंने स्वामी जी से ही अपनी परंपरा का आरंभ किया है और उन्हीं की प्रथम वंदना भी की है। इससे यही सिद्ध होता है कि हरिदासी परंपरा का विकास किसी संप्रदाय के अंतर्गत न होकर स्वतंत्र रूप में हुआ है।

विरक्त-परंपरा के विख्यात संत-कवि श्री भगवत रसिक की वाणी से ऐसा ज्ञात होता है कि श्री किशोरदास जी के मत का समर्थन पूर्णतया विरक्त-परंपरा में भी नहीं हुआ था। भगवत रसिक जी ने हरिदासी परंपरा का जो सांप्रदायिक स्वरूप प्रस्तुत किया है, वह किशोरदास जी के मतानुसार नहीं है। जहाँ किशोरदास जी ने द्वैताद्वैत वादी निंबार्क संप्रदाय का समर्थन किया है; वहाँ भगवतरसिक जी ने इसे एक दम अस्वीकार किया है। वे ईश्वर की इच्छा को ही प्रधान मान कर हरिदासी मत के लिए 'इच्छाद्वैत' और 'सखी संप्रदाय' नामों का संकेत करते हैं—

नाँही द्वैताद्वैत हम, नहीं विशिष्टाद्वैत।
बँध्यौ नहीं मत वाद में, ईश्वर 'इच्छाद्वैत'॥× ×
'भगवत' नित्य बिहार परौ सब ही कों परदा।
रहैं निरंतर पास, रसिकवर 'सखी संप्रदा'॥

भगवतरसिक जी द्वारा किया हुआ 'इच्छाद्वैत' नाम का संकेत बिलकुल नया भी नहीं था। श्री बिहारिनदास की वाणी में भी इसका संकेत मिलता है—

'इच्छा' एक, अनेक पुनि, पुनि अनेक में एक।
'बिहारीदास' संसय नहीं, याकौ नाम बिवेक॥

श्री भगवत रसिक की वाणी में हरिदासी मत अर्थात् 'सखी संप्रदाय' की रूप-रेखा इस प्रकार बतलाई गई है—

आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी छाप ।
नित्य किसोर उपासना, जुगल मंत्र कौ जाप ।।
जुगल मंत्र कौ जाप, बेद रसिकन की बानी ।
श्री वृंदाबन धाम, इष्ट स्यामा महारानी ।।
प्रेमदेवता मिले बिना, सिध होय न कारज ।
'भगवत' सब सुखदानि, प्रकट भए रसिकाचारज ।।

इसके अनुसार सखी संप्रदाय का रूप इस प्रकार बनता है—

आचार्य—ललिता सखी (स्वामी हरिदास)
छाप—रसिक
उपासना—नित्य किशोर
मंत्र—युगल मंत्र
प्रमाण ग्रंथ—रसिकों की वाणी
धाम—श्री वृंदाबन
इष्ट—श्री राधा जी

स्वामी हरिदाम जी के अनुगामियों की दोनों परंपराओं के अधिकार में उनके संप्रदाय से संबद्ध निम्न लिखित प्रसिद्ध स्थल वृंदाबन में हैं—

विरक्त संत-परंपरा—१. श्री गोरेलाल जी का मंदिर, जिसमें स्वामी नरहरिदास जी के सेव्य ठाकुर विराजमान हैं। २. श्री रसिकबिहारी जी का मंदिर, जिसमें स्वामी रसिकदास जी के सेव्य ठाकुर बिराजते हैं। ३. टट्टी संस्थान, जो विरक्त परंपरा का प्रमुख केन्द्र है। इसमें स्वामी हरिदास जी के स्मृति-चिह्न स्वरूप उनके करुवा, गूदड़ी और बाँकी सुरक्षित हैं।

गृहस्थ गोस्वामी-परंपरा—१. निधुबन, जिसमें श्री बिहारी जी का प्राकट्य स्थल और स्वामी जी तथा उनके प्रमुख शिष्यों की समाधियाँ हैं। २. श्री बाँकेबिहारी जी का मंदिर, जिसमें स्वामी जी के ठाकुर श्री बिहारी जी विराजमान हैं।

जीवनी का निष्कर्ष—

स्वामी हरिदास जी का जन्म विक्रम की १६ वीं शती के मध्य काल में एक प्रतिष्ठित ब्राह्मण कुल में हुआ था। वे अपने जन्म-स्थान से युवावस्था में ही विरक्त होकर वृंदावन आ गये थे और वहाँ के निधुबन नामक एक रमणीक स्थल में निवास करने लगे थे। वे पर्याप्त समय तक वृंदाबन में विद्यमान रहे। उनका देहावसान दीर्घायु में १७ वीं शती के मध्य में हुआ था।

वे श्री श्यामा-कुंजबिहारी के युगल स्वरूप की उपासना करते थे। उनकी भक्ति वैराग्य मूलक थी। वे मानसी ध्यान में लीन रह कर अपने आराध्य स्वरूप की 'नित्य बिहार' लीलाओं का दिव्य दर्शन किया करते थे। अपनी साधना-भक्ति की चरमावस्था के कारण उन्हें किसी देव-विग्रह की आवश्यकता नहीं थी; किंतु भक्त जनों की सुविधा के लिए उन्होंने मार्गशीर्ष शु० ५ को निधुबन में श्री बिहारी जी की प्रतिमा का प्राकट्य किया था।

वे रसिकाचार्य होते हुए भी परम विरक्त थे। कोपीन, कंथा और करुआ के अतिरिक्त वे सांसारिक सुख-सुविधा की किसी वस्तु का स्पर्श तक नहीं करते थे। श्री बिहारी जी के भोग के लिए वे प्रतिदिन नाना प्रकार के व्यंजन बनवाते थे और उन्हें मोर-बंदरों को खिला देते थे; किंतु स्वयं कुछ चनों के अतिरिक्त कोई अन्य पदार्थ ग्रहण नहीं करते थे। उनके दर्शन के लिए अनेक धनी-मानी व्यक्ति आया करते थे; जो उनकी आज्ञानुसार सेवा करने को उत्सुक रहते थे, किंतु वे किसी से कोई वांछा नहीं करते थे।

वे संगीत शास्त्र के धुरंधर आचार्य और गायक-शिरोमणि थे। कहते हैं, उस काल के विख्यात संगीतज्ञ और अकबरी

दरबार के सर्वश्रेष्ठ गायक तानसेन ने स्वामी से संगीत की शिक्षा प्राप्त की थी। तानसेन की प्रेरणा से ही मुगल-सम्राट अकबर ने छद्म वेश में निधुबन जाकर स्वामी जी का दिव्य संगीत सुना था। वे ध्रुपद शैली के गायक थे। ध्रुपद के एक अन्य गायक हरिदास डागुर को कुछ लोग स्वामी जी से अभिन्न मानते हैं; किंतु वास्तव में स्वामी हरिदास जी और हरिदास डागुर दोनों भिन्न-भिन्न संगीतज्ञ थे।

उनकी प्रामाणिक रचना के रूप में १२८ ध्रुपद मान्य हैं। इनमें से १८ 'सिद्धांत के पद' और १०८ या ११० 'केलिमाल' के नाम से प्रसिद्ध हैं। सिद्धांत के पदों में ज्ञान, वैराग्य और भक्ति की सामान्य बातें हैं। केलिमाल के पदों में श्यामा-कुंजबिहारी के नित्य बिहार की दिव्य लीलाओं का रसपूर्ण कथन हुआ है।

स्वामी जी के प्रभावशाली व्यक्तित्व, उत्कट वैराग्य, अलौकिक संगीत और विशिष्ट भक्ति-भाव के कारण उनके अनेक भक्त हो गये थे। स्वामी जी के देहावसान के पश्चात् उनकी भक्त-मंडली ने एक संप्रदाय का सा रूप धारण कर लिया, जिसमें विरक्त संतों तथा गृहस्थ गोस्वामियों के दो वर्ग हो गये। स्वामी जी के उपास्य श्री बिहारी जी की सेवा-पूजा गृहस्थ गोस्वामी करते हैं। उनके अधिकार में श्री बिहारी जी का मंदिर और निधुबन का अधिकांश भाग है। विरक्त संतों का प्रमुख केन्द्र 'टट्टी संस्थान' है। इसके अतिरिक्त ठाकुर श्री गोरेलाल जी और श्री रसिकबिहारी जी के मंदिरों पर भी उनका अधिकार है।

स्वामी जी के विरक्त शिष्यों की परपरा में अनेक तपस्वी और वाणीकार हुए हैं। उनकी वाणियाँ ब्रजभाषा भक्ति-साहित्य की अमूल्य निधि है।

स्वामी हरिदास जी के उपास्य श्री बिहारी जी

द्वितीय परिच्छेद

स्वामी हरिदास की वाणी

१. सिद्धांत के पद

[१] [राग विभास[1]

ज्योंही-ज्योंही तुम राखत हौ,
त्योंही-त्योंही रहियत हौं, हो हरि।
और तौ अचरचे, पाँय धरों—
सो तों कहो कौन के पैड़ भरि॥
जद्दपि कियौ चाहौं अपनौ मन भायौ,
सो तौ क्यों करि सकौं, जो तुम राखौ पकरि।
कहि (श्री) हरिदास पिंजरा के जनाबर ज्यों,
फटफटाय रह्यौ उड़िवे कों कितौऊ करि॥

अचरचे = अ + चरचे = चर्चा नहीं।

हे हरि! तुम जिस-जिस प्रकार से रखते हो, मैं उसी-उसी प्रकार से रहता हूँ। और बात की तो चर्चा ही नहीं, (तुम्हारी इच्छा के बिना) यदि मैं पाँव भी धरूँ, तो कहो कौन के (सामर्थ्य से) डग भरूँ? यद्यपि मैं अपना मनभाया किया चाहता हूँ, (पर) कैसे कर सकता हूँ; (क्यों कि) तुमने जो पकड़ रखा है। श्री हरिदास कहते हैं, (भव-जाल में फँसा हुआ जीव) पिंजरा के पक्षी की तरह किसी भी तरफ उड़ने के लिए फड़फड़ा रहा है (किंतु उड़ नहीं सकता; अर्थात् भगवान् की इच्छा बिना भव-बंधन से मुक्त नहीं हो सकता है)।

[२] [राग विभास[2]

काहू कौ बस नाहिं, तुम्हारी कृपा तें—
सब होय, श्रीबिहारी-बिहारिन।
और (तौ) मिथ्या प्रपंच,
काहे कों भाषियै, सु तौ है हारिन॥
जाहि तुमसों हित, तासों तुम—
हित करौ, सब सुख-कारिन।
(श्री) हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
प्रानन के आधारिन॥

हारिन=हरण करने वाले, आत्म-स्वरूप को भुलाने वाले।

हे श्री बिहारी-बिहारिणी जी! (इस संसार में) किसी का वश नहीं (चलता) है; तुम्हारी कृपा से ही सब-कुछ होता है। और तो सब झूँठे प्रपंच हैं, उन्हें कहने से क्या लाभ! (क्यों कि) वे (आत्म-स्वरूप को) भुलाने वाले हैं। हे समस्त सुखों के कर्त्ता! जो तुमसे प्रेम करता है, उससे तुम भी प्रेम करते हो। श्री हरिदास कहते हैं, निकुंज बिहारी श्यामा-श्याम ही प्राणों के आधार हैं।

[३] [राग विभास[3]

कबहुँ-कबहुँ मन इत-उत जात, यातें अब कौन अधिक सुख।
बहुत भाँतिन घत आनि राख्यौ, नाँहि तौ पावतौ दुख॥
कोटि काम लावन्य बिहारी,
ताके मुहाँचुही सब सुख लिएँ रहति रुख।
(श्री) हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी कौ—
दिन देखत रहौं विचित्र मुख॥

घत=उपाय, साधन। आनि राख्यौ=पकड़ कर ला रखा है। मुहाँचुही=मुख देखना।

कभी-कभी मन इधर-उधर चला जाता है, (किंतु) अनेक उपायों से उसे पकड़ कर (और यह समझा कर) कि इससे बड़ा और कोई सुख नहीं है, ला रखा है; वरना इसे दुःख उठाना पड़ता। श्री बिहारी जी करोड़ों कामदेवों की छवि (धारण किए हुए) हैं। सब सुख उनके मुख की ओर देखते हुए उनका रुख लिए रहते हैं (अर्थात् यह देखते रहते हैं कि जिधर उनका रुख हो, उधर ही जावें)। स्वामी हरिदास कहते हैं, मैं प्रतिदिन निकुंजबिहारी श्यामा-श्याम के विलक्षण मुख की ओर देखता रहता हूँ।

[४] [राग विभास[४]

हरि भज, हरि भज, छाँड़ि न मान नर तन कौ।
मत बंछै, मत बंछै तिल-तिल धन कौ॥
अनमाँग्यौ आगं आवैगौ, ज्यों पल लागत पलकौ।
कहि (श्री) हरिदास मीच ज्यों आवै, त्यों धन है आपुन कौ॥

मत बंछै = इच्छा मत कर। अनमाँग्यौ = बिना माँगा हुआ।

अरे नर! तू हरि का निरंतर भजन कर। तू देह के अभिमान (अहंभाव) को क्यों नहीं छोड़ता? (हरि-भजन जैसे अमूल्य रत्न को छोड़ कर) अरे! थोड़े-थोड़े धन की इच्छा मत कर, मत कर। बिना माँगे ही वह तेरे पास (इस प्रकार) आवेगा, (जिस प्रकार) पल भर में पलकें लगती हैं (अर्थात् जैसे पलकें लगती और खुलती हैं, उसी प्रकार धन आवेगा और चला जावेगा)। श्री हरिदास कहते हैं, अपने लिए तो धन (का आना) मृत्यु आने के समान है।

[५] [राग बिलावल[१]

ए हरि! मो सौ न बिगारन कौं, तो सौ न सँवारन कौं,
मोहि-तोहि परी होड़।
कौन धौं जीतै, कौन धौं हारै, पर बदी न छोड़॥

तुम्हरी माया बाजी बिचित्र पसारी,
　　　　　　　　　　मोहे मुनि (सुनि) का के भूले कोड़ ।
कहि (श्री) हरिदास हम जीते, हारे तुम, तऊ न तोड़ ॥

होड़=प्रतिद्वंदिता । बदी=निश्चित, तय की हुई । बाजी=खेल । कोड़=गोद । तोड़=अंतिम निर्णय, निष्कर्ष ।

हे हरि ! न मेरे समान कोई बिगाड़ने वाला है और न तेरे समान कोई सुधारने वाला है; (इस बिगाड़ने सुधारने में) मेरी तेरी प्रतिद्वंदिता हो गई है । चाहें कोई जीते (और) कोई हारे, किंतु इस बदी हुई (प्रतिद्वंदिता) को छोड़ना नहीं है । तेरी माया का अद्भुत खेल (सर्वत्र) व्याप्त है, जिसमें मुनि जन भी मोहित होते सुने गये हैं; वे किसकी गोद में भूले हैं ? (अर्थात् मुनि जन भी तेरी माया की गोद में ही अपने को भूले हुए सुने गये हैं ।) श्री हरिदास कहते हैं, (यद्यपि) हम जीते और तुम हारे हो, (तथापि) अंतिम निर्णय नहीं हुआ है (अर्थात् हमारी बिगाड़ करने की प्रवृत्ति तुम्हारी सुधार करने की प्रवृत्ति से कहीं अधिक बढ़ी हुई है; किंतु फिर भी तुम इसे छोड़ते नहीं हो ।)

[६]　　　　[राग आसावरी[1]

बंदे, अखतियार भला ।
चित न डुलाव, आव समाधि भीतर, न होहु अगला ॥
न फिर दर-दर, पिदर-दर न होहु अँधला ।
कहि (श्री) हरिदास करता किया सो हुआ, सुमेर अचल चला ॥

बंदे=हे नर । अखतियार=अधिकार । समाधि=मन और इंद्रियों की निरोधावस्था । अगला=आगे का (जन्म), पुनर्जन्म । दर-दर=घर-घर । पिदर=पिता । अँधला=अंधा, दृष्टिहीन । करता=ईश्वर, भगवान् ।

अरे बंदे (सेवक) ! तुझे (मनुष्य-योनि प्राप्त होने से सेवा करने का) अच्छा अधिकार मिला है। तू मन को स्थिर कर एकाग्र चित्त हो (कर सेवा कर); जिससे तेरा पुनर्जन्म न हो। तू अंधा होकर घर-घर मत फिर, (अर्थात् इधर-उधर मत भटक) और अपने जन्म दाता (भगवान्) का ध्यान कर। श्री हरिदास कहते हैं, वह (भगवान्) कर्त्ता (सब कुछ करने वाला) है। उसने जो करना चाहा, वही हुआ है। (उसकी इच्छा से) सुमेर पर्वत (जो कदापि हिल-डुल नहीं सकता) चलायमान हो जाता है।

[७] [राग आसावरी[२]

हित तौ कीजै (अहो) कमलनैन सों,
जा हित आगै, और हित लागै फीकौ।
कै हित कीजै साधु-संगति सों,
(जो) किलबिष जाय (सब) जी कौ॥
हरि कौ हित ऐसौ, जैसौ रंग मजीठ,
संसार हित जैसौ कसूंभा दिन दुती कौ।
कहि हरिदास तासों हित कीजै बिहारीजू सों,
ओर निबाहू जानि जी कौ॥

किलबिष=पाप। मजीठ=पक्का रंग। कसूंभा=कसूमी रंग, अर्थात् कच्चा रंग। दुती=दो। ओर=अंत तक। निबाहू=निर्वाह करने वाले।

कमलनैन (श्री बिहारी जी) से ही प्रेम करना चाहिए, (क्यों कि) उनके प्रेम के आगे और सब का प्रेम फीका लगता है; अथवा सत्संग से प्रेम करना चाहिए, जिससे हृदय के सब पाप दूर हो जावें। भगवत्प्रेम ऐसा (स्थायी) है, जैसा मजीठ का रंग (जो सदा चटकदार रहता है); सांसारिक प्रेम कसूमी रंग जैसा है,

जो दो दिन का ही है (अर्थात् शीघ्र ही भद्दा हो जाता है)। श्री हरिदास जी कहते हैं, इसलिए अंत समय तक (जीव का) निर्वाह करने वाले समझ कर श्री बिहारी जी से ही हित करना चाहिए।

[८] [राग आसावरी[3]

तिनुका ज्यों बयार के बस।
ज्यों चाहै त्यों उड़ाय लै डारै, अपनै रस॥
ब्रह्म लोक, सिव लोक, और लोक अस।
कहि (श्री) हरिदास बिचारि देखौ, बिना बिहारी नाँहि जस॥

अपने रस=अपनी इच्छा से। जस=जैसा।

जैसे तिनुका पवन के आधीन है कि उसे वह अपनी इच्छा से जहाँ चाहें उड़ा कर डाल देता है; वैसे ही ब्रह्म लोक, शिव लोक तथा अन्य लोक भी हैं (जिनका संचालक कोई सर्वशक्तिमान है)। श्री हरिदास जी कहते हैं, मैंने विचार कर देख लिया कि श्री बिहारी जी जैसा और कोई नहीं है, (अर्थात् वे ही अपनी इच्छा से समस्त लोकों का संचालन करते हैं)।

[९] [राग आसावरी[4]

संसार समुद्र, मनुष्य मीन-नक्र-मगर, और जीव बहु बंदसि।
मन - बयार प्रेरे, स्नेह - फंद फंदसि॥
लोभ पिंजर, लोभी मरजीवा, पदारथ चारक खंदसि।
कहि (श्री) हरिदास तेई जीव पार भए,
जे गहि रहे चरन आनंद-नंदसि॥

नक्र=घड़ियाल। बंदसि=बंदी हैं। फंदसि=फँसे हुए हैं। मरजीवा=पनडुब्बा, गोताखोर। चारिक=चारों। खंदसि=खोदते हैं। आनंद नंदसि=आनंद स्वरूप।

संसार रूपी समुद्र में मानव गरा मगर-मच्छ-घड़ियाल तथा अन्य जीवों की तरह बदी हैं। वे मन रूपी वायु की प्रेरणा से स्नेह के फंदे में फँसे हुए हैं। लोभ रूपी पिंजड़े (तन) में लोभी (जीव) पनडुब्बे के समान हैं, जो चारों पदार्थों (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) को खोदते हैं। श्री हरिदास जी कहते हैं, जिन्होंने अनंदस्वरूप (श्री बिहारी जी) के चरण पकड़े, वे ही जीव (इस संसार सागर से) पार हुए हैं।

टिप्पणी—प्राचीन काल में समुद्र से मोती निकालने वाले पनडुब्बों को लोहे के पिंजड़ों में बैठा दिया जाता था; जिससे उनकी रक्षा समुद्री जीवों से हो सके। समुद्र के तल में पहुँचने पर पनडुब्बे मोतियों के लोभ में वहाँ खुदाई करते थे; किंतु शीघ्रतावश जो कुछ भी उन्हें मिलता, उसे ही लेकर ऊपर आते थे। उन्हें मोतियों के स्थान पर प्रायः कंकड़-पत्थर ही प्राप्त होते थे। तात्पर्य यह है, जीव मुक्ता (मुक्ति, मोक्ष) पाने के लोभ में संसार-सागर में गोते खाता है; किंतु वह पार तो केवल भगवान् के आश्रय से ही हो सकता है। यहाँ पर भगवत् आश्रय की तुलना में चारों पदार्थों को भी तुच्छ बतलाया गया है।

[१०] [राग आसावरी[५]

हरि के नाम कौ आलस कत करत है रे, काल फिरत सर साँधै।
बेर-कुबेर कछू नहिं जानत, चढ्यौ रहत है काँधै॥
हीरा बहुत जवाहर संचे, कहा भयौ हस्ती दर बाँधै।
कहि (श्री) हरिदास महल में बनिता बनि ठाढ़ी भई,
एकौ न चलत, जब आवत अंत की आँधै॥

कत=क्यों। सर साँधै=बाण चढ़ाये। बेर-कुबेर=समय-कुसमय। आँधै=आंधी।

अरे नर ! हरि-नाम के लिए आलस्य क्यों कर रहा है, (जानता नहीं तुझे मारने को काल बाण चढ़ाए फिरता है। वह समय-कुसमय कुछ नहीं जानता है, (हर दम तेरे) कंधे पर सवार रहता है। क्या हुआ,

यदि तू ने बहुत से हीरा (आदि) जवाहरात का संग्रह कर लिया, घर पर हाथी बाँध लिया (और तेरे) महल में सुसज्जित बनिता (भी) आ गई। श्री हरिदास कहते हैं, जब अंत (मृत्यु) की आँधी आती है, तब (उनमें से) एक भी (साथ) नहीं चलता।

[११] [राग आसावरी[६]

देखौ इन लोगन की लावनि।
बूझत नाँहि हरि चरन कमल कों, मिथ्या जनम गँवावनि।
जब जम-दूत आनि घेरत, तब करत आप मन भावनि॥
कहि हरिदास तबहि चिरजीवौ, जब कुंजबिहारी चितावनि॥

लावनि=लगन, संसार के प्रति आसक्ति। चितावनि=चिंतन।

इन (अज्ञानी) लोगों की संसार के प्रति आसक्ति तो देखो! वे श्री हरि के चरणारविंद (के सुख) को नहीं जानते हैं, (और) व्यर्थ ही जन्म गँवा रहे हैं। जब यमदूत आकर घेरेंगे, तब वे अपने मन में ख्याल करेंगे (कि हमने इस संसार में कुछ नहीं किया, व्यर्थ जन्म खो दिया)। श्री हरिदास कहते हैं, जब श्री कुंजबिहारी जी का चिंतन करोगे, तभी अमरत्व को प्राप्त होगे।

[१२] [राग आसावरी[७]

मन लगाय प्रीति कीजै करुवा सों, ब्रज-बीथनि दीजै सोहनी।
वृंदाबन सों, बन-उपबन सों, गुंज-माल हाथ पोहनी॥
गो गो-सुतन सों, मृगी मृग-सुतन सों, और तन नैकु न जोहनी।
(श्री) हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजविहारी सों चित्त,
ज्यों सिर पर दोहनी॥

करुवा=मिट्टी का टोंटीदार पात्र। सोहनी=बुहारी, झाड़ू। जोहनी=देखना। दोहनी=मटकी; दूध दुहने का पात्र।

मन लगा कर (श्री बिहारी जी से) प्रीति करे, (समस्त वस्तुओं का परित्याग कर केवल) मिट्टी का पात्र ग्रहण करे और (निरभिमान तथा दीनता पूर्वक) व्रज की गलियों में बुहारी लगावे। वृंदाबन (तथा अन्य) बन-उपबनों से लेकर अपने हाथों से गुंजा-माला बनावे (और उसे प्रेम पूर्वक श्री बिहारी जी के अर्पित करे)। (जैसे) गाय और मृगी किसी और के तन को तनिक भी न देख कर अपने बच्चों से (प्रीति करती हैं, उसी प्रकार अनन्यता पूर्वक श्री बिहारी जी से प्रीति करनी चाहिए)। श्री हरिदास के सर्वस्व श्री कुंजबिहारी श्यामा-श्याम हैं, उनसे ही चित्त लगावे (जैसे गूजरी का ध्यान सब ओर से हट कर अपने) सिर के दुग्ध-पात्र पर ही रहता है।

टिप्पणी—तात्पर्य यह है, जिस प्रकार गाय, मृगी और ग्वालिनी सब ओर देखती हुई भी अपने मन को क्रमशः बच्चे तथा दोहनी की ओर रखती हैं; उसी प्रकार संसार में रहते हुए भी उससे उदासीन होकर श्री कुंजबिहारी मन में लगाए रखना चाहिए।

[१३] [राग कल्यान[१]

हरि कौ ऐसौई सब खेल।
मृग तृष्ना जग व्यापि रह्यौ है, कहूँ बिजौरौ न बेल॥
धन-मद जोवन-मद राज-मद, ज्यों पंछिन में डेल।
कहि हरिदास यहै जिय जानौ, तीरथ कैसौ मेल॥

बिजौरौ=वीज। डेल=कंकड़। मेल=संग, साथ।

हरि का ऐसा ही सब खेल है। समस्त जगत् में मृग-तृष्णा (भ्रम) व्याप्त है, जिसका न कहीं बीज है और न जिसकी बेल है (अर्थात् समस्त दृश्य जगत् निराधार और भ्रम मात्र है)। धन, यौवन और राज्य का अभिमान पक्षियों पर (फेंके हुए) कंकड़ जैसा है (अर्थात् जिस प्रकार पक्षियों का समूह एक साधारण सा कंकड़ फेंकने से ही उड़ जाता

है; उसी प्रकार धन, जवानी और राज्य का अभिमान भी क्षणभंगर है)। श्री हरिदास कहते हैं, इसे मन में समझ लेना चाहिए कि यह तीर्थ के संग-साथ जैसा है (अर्थात्, जिस प्रकार तीर्थ-यात्रा में नाना स्थानों से आये हुए अनेक व्यक्तियों का संग अस्थायी होता है; उसी प्रकार धन, जवानी और राज्य का अभिमान भी स्थायी नहीं है।)

[१४] [राग कल्यान[२]

झूंठी बात साँची करि दिखावत हो, हरि नागर।
निसि-दिन बुनत-उधेरत जात, प्रपंच कौ सागर॥
ठाठ बनाइ धरयौ मिहरी कौ, पुरिष तैं आगर।
कहि हरिदास यहै जिय जानौं, सपने कौ सौ जागर॥

नागर=चतुर। बुनत-उधेरत=बनाते और बिगाड़ते। प्रपंच=संसार। ठाठ=सांसारिक सरंजाम। मिहरी=माया। पुरिष=पुरुष (भगवान्)। आगर=दक्ष। तैं=तुमने। जागर=जागरण

हे चतुर भगवान्! तुम (माया निर्मित सृष्टि की) झूंठी बात को भी सच्ची कर दिखाते हो। तुम संसार-सागर को रात-बिन बनाते और बिगाड़ते जा रहे हो। उस पुरुष (पुरुषोत्तम भगवान्) से और कौन (अधिक) दक्ष है, जिसने अपनी माया से यह ठाठ (संसार) बना रखा है! श्री हरिदास जी कहते हैं, इसे हृदय में जान लो कि यह स्वप्न के उपरांत जागरण जैसा है (अर्थात् जैसे जागने पर स्वप्न की बातें झूठी जान पड़ती हैं, उसी प्रकार यह माया निर्मित संसार भी मिथ्या है)।

[१५] [राग कल्यान[३]

जगत प्रीति करि देखी, नाहिनें गटी कौ कोऊ।
छत्रपति रंक लौं देखे, प्रकृति विरुद्ध बन्यौ नहीं कोऊ॥
दिन जो गये बहुत जनमनि के, ऐसैं जाहु जिन कोऊ।
कहि हरिदास मीत भले पाये बिहारी, ऐसे पावौ सब कोऊ॥

गटी=गाँठ।

जगत् से प्रीति करके देख ली, (यहाँ पर जिससे प्रेम की) गाँठ बँध सके, ऐसा कोई नहीं है। राजा से भिखारी तक देखे, प्रकृति के विरुद्ध किसी की रचना नहीं हुई है (अर्थात् सभी प्रकृति के सत्व, रज, तम गुणों से युक्त हैं)। अनेक जन्मों के दिन (व्यर्थ) गये, जो अब नहीं जाने चाहिए। श्री हरिदास जी कहते हैं, हमें श्री बिहारी जी जैसे उत्तम मित्र प्राप्त हुए हैं, वैसे सब को प्राप्त हों !

[१६] [राग कल्यान[४]

लोग तौ भूले भलें भूले, तुम जिनि भूलौ मालाधारी।
अपुनौ पति छाँड़ि औरन सों रति, ज्यों दारनि में दारी॥
स्याम कहत ते जीव मोतें बिमुख भए,
सोऊ कौन, जिन दूसरी करि डारी।
कहि (श्री) हरिदास जज्ञ-देवता-पितरन कों स्रद्धा भारी॥

मालाधारी = वैष्णव। दारी = व्यभिचारिणी।

यदि साधारण जन (भगवान् को) भूल गये, तो भले ही भूल जाँय, पर हे मालाधारी वैष्णवो ! तुम न भूलना। जिस प्रकार स्त्रियों में व्यभिचारिणी अपने पति को छोड़ कर दूसरों से प्रेम करती है, (उसी प्रकार आस्तिक वैष्णव का भगवान् को भूल कर अन्य देवी-देवताओं की भक्ति करना है)। भगवान् कहते हैं, जो जीव दूसरों (देवी-देवताओं) को स्वीकार करते हैं, वे मुझसे विमुख हो जाते हैं। श्री हरिदास कहते हैं, (ऐसे ही जीव भगवान् को भूल कर) यज्ञ, देव और पितृगण के प्रति अत्यंत श्रद्धा प्रकट करते हैं।

[१७] [राग कल्यान[५]

जौलों जीवै, तौलों हरि भजि रे मन, और बात सब वादि।
द्यौस चार के हला-भला में, तू कहा लेइगौ लादि॥
माया-मद, गुन-मद, जोबन-मद, भूल्यौ नगर विवादि।
कहि (श्री) हरिदास लोभ चरपट भयौ, काहे की लगे फिरादि॥

वादि = व्यर्थ । हला-भला = हो-हल्ला । चरपट = नष्ट । फिराद (फर्याद) = प्रार्थना ।

अरे मन ! जब तक जीवन है, तब तक हरि का भजन कर, (इसके अतिरिक्त) अन्य बातें व्यर्थ हैं । (भला) चार दिन के हो-हल्ला में तू क्या लाद कर ले जावेगा ! तू धन, यौवन और राज्य के अभिमान में तथा सांसारिक विवाद में भूला हुआ है । श्री हरिदास कहते हैं, यदि लोभ नष्ट हो गया, तो (फिर भगवान् से किसी वस्तु की प्राप्ति के लिए) प्रार्थना करने की आवश्यकता ही न रहे ।

[१८] [राग कल्यान[६]

प्रेम-समुद्र रूप-रस गहरे, कैसैं लागै घाट ।
वेकारौं दै जान कहावत, जानपने की कहा परी बाट ॥
काहू कौ सर सूधौ न परत, मारत गाल गली-गली हाट ।
कहि (श्री) हरिदास जानि ठाकुरबिहारी, तकत ओट पाट ॥

घाट = किनारा । जान = जानने वाला, ज्ञानी । जानपने = ज्ञानी पन । बाट = मार्ग, रास्ता । सर सूधौ न परत = निशाना सीधा न पड़े, उद्देश्य-पूर्ति न हो । मारत गाल बात बनाता है, गाल बजाता है । हाट = बाजार । तकत = देखता है । ओट = आड़ । पाट = वस्त्र ।

रूप-रस के अथाह प्रेम-सागर से (कोई) कैसे किनारे लग सकता (पार जा सकता) है ! (अश्रु-कम्पादि सात्विक) विकारों को दे (दिखावा, झूठा प्रदर्शन) कर ज्ञानी कहलवाता है; (पर) ज्ञानीपन का क्या यही मार्ग है ! किसी (ऐसे पाखंडी) का निशाना सीधा नहीं पड़ता है (उद्देश्य पूर्ति नहीं होती है), (चाहें वह) गली-गली बाजार-बाजार में (कैसी ही) बात बनाता फिरे । श्री हरिदास कहते हैं, ठाकुर श्री बिहारी जी सब जानते हैं; वे वस्त्र की आड़ (परोक्ष रूप) से सबको देख रहे हैं ।

निधिबन (वृंदाबन) में संगमरमर का नव निर्मित
श्री श्यामा-श्याम का रंगमहल
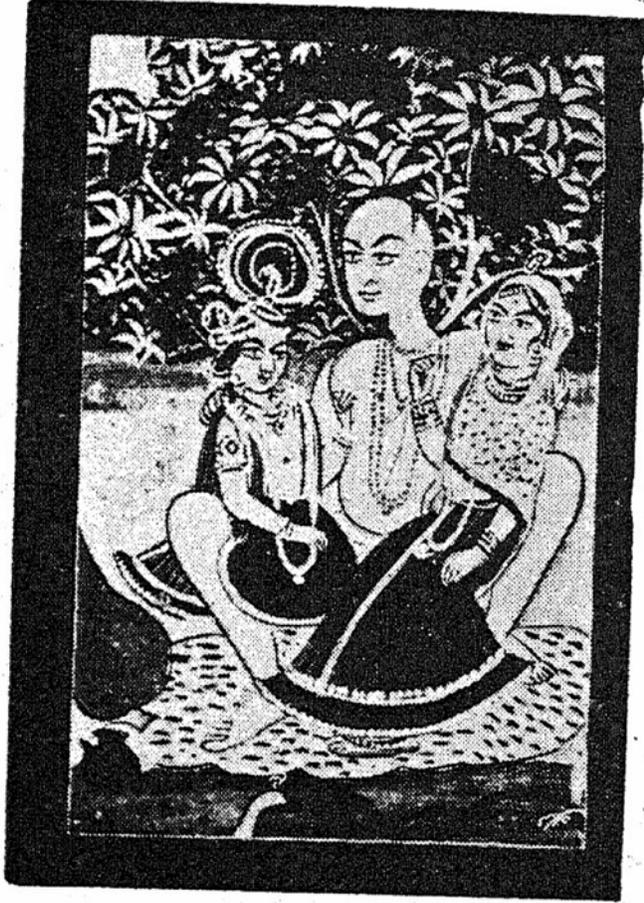
श्री हरिदास के स्वामी
श्यामा-कुंजबिहारी

२. केलिमाल

[१] कान्हरौ[1]

माई री, सहज जोरी प्रगट भई, जु रंग की–
गौर-स्याम घन-दामिनि जैसें।
प्रथम हूँ हुती, अब हूँ, आगें हूँ रहि है, न टरि है तैसें ।।
अंग-अंग की उजराई-सुघराई-चतुराई-सुंदरता ऐसें।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, सम वैस बैसें ।।

[२] कान्हरौ[2]

रुचि के प्रकास परस्पर खेलन लागे।
राग-रागिनी अलौकिक उपजत, निर्त्त संगीत अलग लाग लागे ।।
राग ही में रंग रह्यौ, रंग के समुद्र में ये दोउ झागे।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी पै रंग रह्यौ,
रस ही में पागे ।।

[३] कान्हरौ[3]

ऐसें ही देखत रहौं, जनम सुफल करि मानों।
प्यारे की भावती, भावती जू के प्यारे, जुगल किसोर(हि)जानों ।।
छिनु न टरों, पल होहु न इत-उत, रहों एक ही तानों।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी मन-रानों ।।

[४] कान्हरौ[4]

जोरी विचित्र बनाई री माई, काहू मन के हरन कों।
चितवत दिष्टि टरत नहिं इत-उत,
मन-बच-क्रम याही संग भरन कों ।।
ज्यों घन-दामिनि संग रहत नित, बिछुरत नाँहिन और बरन कों।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी न टरन कों ।।

[५] राग कान्हरौ[५]

इत-उत काहे कों सिधारति, (मेरी) आँखिन आगें ही तू आव।
प्रीति कौ हितु हौं तौ तेरौ जानौं, ऐसौई राखि सुभाव॥
अमृत से बचन जिय की प्रकृति सों मिलैं, ऐसौई दै दाव।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कहत री प्यारी,
प्रीति कौ मंगल गाव॥

[६] राग कान्हरौ[६]

प्यारी जू, जैसें तेरी आँखिन में हौं अपनपौ देखत हौं,
ऐसें तुम देखति हौ किधौं नाँहीं।
हों तोसों कहौं प्यारे आँखि मूंदि रहौं,
तौ लाल निकसि कहाँ जाहीं॥
मोकों निकसिवे कों ठौर बतावौ,
साँची कहौं बलि जाहुँ लागों पाँहीं।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
तुम्हें देख्यौ चाहत, और सुख लागत काँहीं॥

[७] राग कान्हरौ[७]

प्यारी, तेरौ बदन अमृत की पंक, तामैं बींधे नैन द्वै।
चित चल्यौ काढ़न कों, बिकुच संधि संपुट में रह्यौ भ्वै॥
बहुत उपाइ आहि री प्यारी, पै न करत स्वै।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी ऐसें ही रहौं ह्वै॥

[८] राग कान्हरौ[८]

आवत जात बजावत नूपुर।
मेरौ-तेरौ न्याव दई के आगें, जो कछु करौ सो हमारे सिर ऊपर।
प्यारी जू निपट निकट मवास, रही पैंड दूपर।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
बिलसत निहचल धूपर॥

[९] राग कान्हरौ[९]

दृष्टि चँपि बर फंदा, मन पिंजरा, राख्यौ लै पंछी बिहारी ।
चुगौ सुभाव प्रेमजल अंग स्रवत पीवत न अघात रहे मुख निहारी।।
प्यारी-प्यारी रटत रहत छिन ही छिन, याकें और न कछू हिया री।
सुनि हरिदास पंछी नाना रंग देखत ही देखत, प्यारी जू न हारी।।

[१०] राग कान्हरौ[१०]

भूलें-भूलें हूँ मान न करि री प्यारी,
तेरी भौंहें मैली देखत प्रान न रहत तन ।
जियौ न्यौछाबरि करौं प्यारी री तो पर,
काहे तें तू मूकी कहत स्याम घन ।।
तोहि ऐसें देखत, मोहि अब कल कैसें होइ जु प्रान-धन ।
सुनि हरिदास काहे न कहत, यासौं छाँड़िब छाँड़ि अपनां पन ।।

[११] राग कान्हरौ[११]

बात तौ कहत कहि गई, अब कठिन परी बिहारी ।
प्रान तौ नाँहिनैं, तन अस्तविस्त भयौ, कहै कहा प्यारी ।।
भाँवते की प्रकृति देखें जो स्रम भयौ, बहुत हिया री ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा,
बाहु सों बाहु मिलाय रहे मुख निहारी ।।

[१२] राग कान्हरौ[१२]

कुंजबिहारी हौं तेरी बलाइ लेउँ नीकै हो गावत ।
राग - रागिनीन के जूथ उपजावत ।।
तैसीयै तैसी मिली जोरी, प्रिया जू कौ मुख देखत चंद लजावत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कौ नृत्य देखत काहि न भावत ।।

[१३] राग कान्हरौ[13]

एक समैं एकांत बन में करत सिंगार परस्पर दोई ।
वे उनके वे उनके प्रतिबिंबन देखत, रहत परस्पर भोई ।।
जैसे नीके आजु बने, ऐसे कबहूँ न बने,
आरसी सब झूंठी परी कैसी यैब कोई ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
रीझि परस्पर प्रीति नोई ।।

[१४] राग कान्हरौ[14]

राधे, चलि री हरि बोलत, कोकिला अलापत,
सुर देत पंछी राग बन्यौ ।
जहाँ मोर काछ बांधें नृत करत, मेघ मृदंग बजावत बंधान गन्यौ।।
प्रकृति की कोऊ नाँहीं,
यातैं सुरति के उनमान गहि हौं आई मैं जन्यौ ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी की अटपटी बानि–
औरै कहत, कछू औरै भन्यौ ।।

[१५] राग कान्हरौ[15]

तेरौ मग जोवत लाल बिहारी ।
तेरी समाधि अजहूँ नहिं छूटत, चाहत नाँहिंनै नैकु निहारी ।।
औचक आइ, द्वै कर सौं मूंदे नैंन, अरबराइ उठी चिहारी ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा ढूंढत बन में, पाई प्रिया दिहारी ।।

[१६] राग कान्हरौ[16]

मानि (तू) अब चलि री, एक संग रह्यौ कीजै ।
तौ कीजै जो बिन देखें जीजै ।।
ये स्याम घन, तुम दामिनि, प्रेम-पुंज बरषा रस पीजै ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी सों,
हिलि-मिलि रँग लीजै ।।

[१७] राग कान्हरौ[17]

तू रिसि छाँडि री, राधे-राधे !
ज्यों-ज्यों तोकों गहरु, त्यों-त्यों मोकों बिथा (री) साधे-साधे ।।
प्राननि कों पोषत, सुनियत तेरे बचन आधे-आधे ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, तेरी प्रीति बाँधे-बाँधे ।।

[१८] राग कान्हरौ[18]

आजु तृन टूटत है री, ललित त्रिभंगी पर ।
चरन-चरन पर मुरली अधर धरें, चितवनि बंक छबीली भू पर ।।
चलहु न बेगि राधिका पिय पै, जो भयौ चाहत हो सर्वोपर ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कौ समयौ अब नीकौ बन्यौ,
हिलि-मिलि केलि अटल रति भई धू पर ।।

[१९] राग कान्हरौ[19]

दिन डफ-ताल बजावत गावत, भरत परस्पर छिन-छिन होरी ।
अति सुकुमार बदन स्रम बरसत,
भले मिले रसिक किसोर-किसोरी ।।
बातनि बतबतात, राग-रँग रमि रह्यौ,
इत-उत चाह चलत तकि खोरी ।
सुनि हरिदास तमाल स्याम सों, लता लपटि कंचन की थोरी ।।

[२०] राग कान्हरौ[20]

द्वै लर मोतिन की, एक पुंजा पोत कौ सादा,
नेत्रनि दृष्टि लागौ जिन मेरी ।
हाथनि चारि-चारि चूरी, पाँयनि इकसार–
चूरा चौपहलू, इकटक रहे हरि हेरी ।।

एक मरगजी सारी, तन तें कंचुकी न्यारी,
अरु अँचरा की बाईं ढिंग मोरि उरसनि फेरी
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
या रस बस भए, हरें-हरें सरकन नेरी ॥

[२१] राग कान्हरौ[२१]

जोबन-रंग रंगीली, सोंने से गात, ढरारे नैंना, कंठ पोत मखतूली।
अंग-अंग अनंग झलकत, सोहत काननि बीरैं सोभा देत,
देखत ही बनै, जोंन्ह में जोंन्ह सी फूली ॥
तनसुख सारी, लाही अँगिया, अतलस अतरौटा,
छवि चारि-चारि चूरी, पहुँचनि पहुँची खमकि बनी,
नकफूल जेब, मुख बीरा, चौका कौंधै, संभ्रम भूली ॥
ऐसी नित्य बिहारिनि श्री बिहारीलाल संग अति आधीन,
आतुर लपटात, ज्यों तरु तमाल,
कुंज द्वार श्री हरिदासी जोरी सुरति हिडोरें झूली ॥

[२२] राग कान्हरौ[२२]

राधे दुलारी ! मान तजि।
प्रान पायौ जात मेरौ है री, सजि ॥
अपनों हाथ मेरे माथैं धरि, अभै-दान दै अजि।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत री प्यारी,
यों बलि रंग रुचि सों लजि ॥

[२३] राग कान्हरौ[२३]

गुन की बात राधे! तेरे आगै को जानें, जो जानें सो कछु उनहारि।
नृत्य-गीत-ताल भेदनि के बिभेद न जानें,
कहूँ (काहू) जिते किते देखे झारि ॥

तत्व सुद्ध स्वरूप, रेख परमान, जे बिज्ञ सुर सुघर ते पचे भारि ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
नैंक तुम्हारी प्रकृति के अंग-अंग और गुनी परे हारि ॥

[२४] राग कान्हरौ[२४]

सुघर भए (हो) बिहारी ! याही छाँह तें ।
जे जे गटी सुघर (सुर) जानपनें की, ते-ते याही बांह तें ॥
हुते तौ अधिक बड़े सब ही तें,
पै इनकी कस न खटात याँह तें ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी जकि रहे चाह तें ॥

[२५] राग कान्हरौ[२५]

राधा रसिक हैं कुंजबिहारी, कहत जु हौं न कहूँ गयौ,
सुनि-सुनि राधे ! तेरी सों ।
मोहि न पत्याहु तौ संग हरिदासी हुती,
बूझि देखि भटू ! कहि धौं कहा भयौ, मेरी सों ॥
प्यारी तोहि गठौंदन प्रतीत छाँड़ि छीया,
जानि दै इतनीऽब एरी सों ।
गहि लिपटाइ रहे छैल दोऊ,
छाती सों छाती लगाय, फेर-फेरी सों ॥

[२६] राग कान्हरौ[२६]

प्यारी, तेरी महिमा बरनी न जाय (मो पै),
जिहिं आलस काम बस कीन ।
ताकौ दंड हमें लागत है री, भए आधीन ॥
साढ़े ग्यारह ज्यों औंटि, दूजैं नव सत साजि,
सहज ही तामैं जवादि-कपूर-कस्तूरी-कुमकुम के रंग भीन ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी रस बस करि लीन ॥

[२७] राग कान्हरौ

स्रम जल-कन नाँहीं होत, मोती माला कों देहु ।
देखे (बहुत) अमोल मोल नाँहीं तन-मन-धन न्यौछावरि लेहु ॥
रति बिपरीति प्रीति कौ आलस, नाँहीं नाहक तेरे मधि एहु ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, गीति वर मिलए वेहु

[२८] राग कान्हरौ

नील लाल गौर के ध्यान बैठे श्री कुंजबिहारी ।
ज्यों-ज्यों सुख पावत नाहीं, त्यों-त्यों दुख भयौ भारी ॥
अरबराइ प्रगट भई जु, सुख भयौ बहुत हिया री ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी करि मनुहारी ॥

[२९] राग कान्हरौ[२९]

आजु की बानिक प्यारे तेरी, प्यारी तुम्हारी,
बरनी न जाइ छबि ।
इनकी स्यामता, तुम्हारी गौरता, जैसे सित-असित बैनी,
रही ज्यों भुवंगम दबि ॥
इनकौ पीतांबर, तुम्हारौ नील निचोल,
ज्यों ससि कुंदन जेब रवि ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी की–
सोभा बरनी न जाय, जो मिलें रसिक कोटि कवि ॥

[३०] राग कान्हरौ[३०]

देखि-देखि फूल भई ।
प्रेम के प्रकास प्रीति के आगै ह्वै जु लई ।
सुन री सखी ! बागौ बन्यौ आजु, तुम पर तृन टूटत है जु नई ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
सकल गुन निपुन, ता-ता थेई ता-ता थेई गति जु ठई ॥

[३१] राग केदारौ[1]

ऐसी तौ बिचित्र जोरी बनी।
ऐसी कहूँ देखी सुनी न भनी ।।
मनहुँ कनक सुदाह करि-करि, देह अद्‌भुत ठनी।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम-तमालै उठँगि बैठी धनी ।।

[३२] राग केदारौ[2]

हँसत, खेलत, बोलत, मिलत, देखौ मेरी आँखिन सुख।
बीरी परस्पर लेत खबावत, ज्यों दामिनि घन चमचमात,
सोभा बहु भाँतिन सुख ।।
स्त्रुति धुरि राग केदारौ जम्यौ, अधराति निसा रोंम-रोंम सुख।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी के गावत,
सुर देत मोर, भयौ परम सुख ।।

[३३] राग केदारौ[3]

अद्‌भुत गति उपजति अति, नृत्तत दोऊ मंडल कुँवर किसोरी।
सकल सुधंग अंग भरि भोरी, पिय नृत्तत मुसकनि मुख मोरी,
परिरंभन रस रोरी ।।
ताल धरनि बनिता, मृदंग चंद्रागति घात बजैं थोरी-थोरी।
सप्त भाइ भाषा बिचित्र, ललिता गायनि चित चोरी ।।
श्री वृंदाबन फूलनि फूल्यौ पूरन ससि,
त्रिबिधि पबन बहै री, थोरी-थोरी।
गति बिलास रस हास परस्पर, भूतल अद्‌भुत जोरी ।।
श्री जमुना जल बिथकित,पहुपनि बरषा,रतिपति डारति तृन तोरी।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा--कुंजबिहारी जू कौ--
रस रसना कहै को री ।।

[३४] राग केदारौ

प्यारी जू ! जब-जब देखौं तेरौ मुख, तब-तब नयौ-नयौ लागत
ऐसौ भ्रम होत, मैं कबहूँ देखौं न री,
दुति कौं दुति लेखनी न कागत ॥
कोटि चंद तैं कहाँ दुराये री, नये-नये रागत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कहत, काम की सांति न होइ,
न होइ तृपति, रहौं निस-दिन जागत ॥

[३५] राग केदारौ[५]

ऐसी जिय होत, जो जिय सों जिय मिलै,
तन सों तन समाइ ल्यों, तौ देखों कहा हो प्यारी ।
तो ही सों हिलगि, आँखिन सों आँखें मिली रहें,
जीबत कौ यहै लहा हो प्यारी ॥
मोकों इतौ साज कहाँ री प्यारी, हौं अति दीन तुव बस,
भुव-छेप न जाय सहा हो प्यारी ।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कहत,
राखि लै बाहु-बल, हौं बपुरा काम दहा हो प्यारी ॥

[३६] राग केदारौ[६]

आजु रहसि मैं देखियत प्यारी जू, एक बोल माँगौं जो लिखि देहु ।
साखी तेरे नैन-दसन-कच-कुच-कटि-नितंब, जो लिखि देहु ॥
प्रीति द्रब्य रुचि ब्याज परस्पर, मन-बच-क्रम जो लिखि देहु ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा प्यारी पै बोल बुलाय लिखि देहु ।

[३७] राग केदारौ[७]

प्यारी तेरी बाँकनि बान सु मार लागै भौंहें ज्यों धनुष ।
एक ही बार यों छूटत, जैसै बादर बरषत इंद्र अनख ॥

और हथियार को गनै री, चाहनि कनख।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी सौं,
प्यारी ! जब तू बोलति चनख-चनख ॥

[३८] राग केदारौ[8]

काहे तें आजु अटपटे से हरि !
अटपटी पाग, अटपटे से बंद, अटपटी देत आगै सरि ॥
अटपटे पाँय परत मैं परखे, जब आवत हे इत ढरि।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम जानि हौं पाये, आजु लाल औरें परि॥

[३९] राग केदारौ[9]

काहे कों मान करत, मोहिऽब कत दुख देत।
बासे की सी दृष्टि लियें रहौं, तेरी जीवनि तोहि समेत ॥
अब कछु ऐसी करौ, जु भौंहनि टाटी जिनि देहु, कहत इतनेत।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
छल कै गरें लगाय भई रमेत ॥

[४०] राग केदारौ[10]

रोंम-रोंम रसना होती, तऊ तेरे गुन न बखाने जात।
कहा कहौं एक जीभ सखी री, बात की बात बात ॥
भान स्रमित और ससि हू स्रमित भये, और जुबति जात।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कहत री प्यारी,
तू राखत प्रान जात ॥

[४१] राग केदारौ[11]

तुव जस कोटि ब्रह्मांड बिराजै राधे।
श्री सोभा बरनी न जाइ अगाधे ॥
बहुतक जनम बिचारत ही गए साधे-साधे।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
कहत री प्यारी ! ए दिन (मैं) क्रम-क्रम लाधे ॥

[४२] राग केदारौ[१२]

भूली सब सखी देखि-देखि।
जच्छ, किन्नर, नागलोक, देवस्त्री रीझि रहीं भुव लेखि-लेखि॥
कहत परस्पर नारि नारि सों, यह सुंदर्यता अवरेखि रेखि।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामाए कैसै हू चितयें पै परेखि-परेखि॥

[४३] राग केदारौ[१३]

पिय सों तू जोई जो करै, सोई छाजै।
और सैंध करै जो तेरी, सोई लाजै॥
तू सुरग्यान सब अंग सखी री, मान करत बे काजै।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा जिय में बसै, तू नित्त-नित्त बिराजै॥

[४४] राग केदारौ[१४]

सोई तौ बचन मो सों मानि, तैं मेरौ लाल मोह्यौ री साँवरौ।
नव निकुंज सुख-पुंज महल में सुबस बसौ एह गाँवरौ॥
नव-नव लाड़ लड़ाइ लाड़िली, नहिं-नहिं यह ब्रज जाँवरौ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा—
कुंजबिहारी पै बारौंगी, मालती भाँवरौ॥

[४५] राग केदारौ[१५]

जो कछु कहत लाड़िलौ, लाड़िली जू सुनियै कान दै।
जो जिय उपजै सो तिहारौई, हित की कहत हौं आन दै॥
मोहि न पत्याहु, तौ छाती टकटोरि देखौ पान दै।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
प्यारी! जाचक कों (जाँचकै) दान दै॥

[४६] राग केदारौ[१६]

प्यारी जू ! आगैं चलि, आगैं चलि,
गहबर बन भीतर जहाँ बोलें कोइल री ।
अति ही विचित्र फूल-पत्रन की सेज्या रची,
रुचिर सँवारी तहाँ तूऽब सोइल री।।
छिन-छिन पल-पल तेरी ए कहानी, तुव मग जोइल री ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कहत छबीलौ (कुंजबिहारी),
काम-रस भोइल री ॥

[४७] राग केदारौ[१७]

प्यारी अब सोइ गई ।
ज्यों-ज्यों जगावत, त्यों-त्यों नहिं जागत,
प्रेम-रस पान करि भोइ गई ॥
जागत होइ तौ जगाऊँ प्यारी,
तातेंऽब परम सचु, रस ही रसिक रस बोइ गई ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा उठिकै गरै लगाई,
प्रेम-प्रीति सों नोइ गई ।।

[४८] राग केदारौ[१८]

डोल झूलत दुलहिनी-दूलहु ।
उड़त अबीर, कुमकुमा छिरकत, खेल परस्पर सूलहु ।।
बाजत ताल-रबाब और बहु, तरनी तनया कूलहु ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-
कुंजबिहारी कौ अनतऽब नाँहिनै फूलहु ।।

[४९] राग केदारौ[१९]

प्यारी पहिरै चूनरी ।
तैसौई लँहगा बन्यौ सिलसिलौ, पूरनमासी की सी पूनरी ॥
हौं जु कहत चलियै मनमोहन, मानैगी न घूनरी ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी चरन लपटाने दूहूँन री।।

[५०] राग केदारौ[20]

बनी री, तेरैं चारि-चारि चूरी करन।
कंठसिरी दुलरी हीरनि की, नासा मुक्ता ढरनि ॥
तैसौई नैनन कजरा फबि रह्यौ, निरखि काम डरनि।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी रीझि-पिय पग परनि॥

[५१] राग केदारौ[21]

प्यारी अब क्यों हूँ-क्यों हूँ आई है।
तुम इत स्रमति अधिक मनमोहन,
मैं कोटि जतन समझाई है ।।
उत हठ करति बहुत नव नागरि, तैसीए नई ठकुराई है।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी कर जोरि मौन ह्वै,
दूबरे की राँधी खीर, कहौ कौन खाई है ॥

[५२] राग केदारौ[22]

सुनि धुनि मुरली बन बाजै, हरि रास रच्यौ।
कुंज-कुंज द्रुम बेलि प्रफुल्लित, मंडल कंचन मनिन खच्यौ ॥
नृत्तत जुगलकिसोर जुबति जन, मन मिलि राग केदारौ मच्यौ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
नीकैं (आजु) प्यारौ लाल नच्यौ ॥

[५३] राग कल्यान[1]

जहाँ-जहाँ चरन परत प्यारी जू तेरे,
तहाँ-तहाँ मन मेरौ करत फिरत परछाँही।
बहुत मूरति मेरी चँवर ढुरावति,
कोऊ बीरी खवावति एकऽब आरसी लै जाहीं ।।
और सेवा बहुत भाँति की, जैसीए कहै कोऊ तैसीए करौं-
जो रुचि ज़ानों जाहीं।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कों भलें मनावत दाइ उपाहीं ।।

[५४] [राग कल्यान[२]

यह कौन बात, जो अबही और, अबही और, अबही औरै ।
देव-नारि, नाग-नारि और नारि तें न होंहि और की औरै ॥
पाछें न सुनी, अब हू आगै हू न ह्वै है यह गति,
अद्‌भुत रूप की और की औरै ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
या रस ही बस भये, यह भई और की औरै ॥

[५५] राग कल्यान[3]

माई, ये बसीठ इनके, ये इनके, और धों को परै बीच ।
हाथापाई करत जु स्रम भयौ, अंग अरगजा की कीच ॥
प्यारी जू के मुख-अंबुज कौ, डहडहाट ऐसौ लागत,
ज्यों अधरामृत की सींच ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी के राग-रंग–
लटपटानि के भेद न्यारे न्यारे, ज्यों पानी में पानी नरीच ॥

[५६] राग कल्यान[४]

कस्तूरी कौ मर्दन अंग में कियें, मुरली धरें, पीतांबर ओढ़ें,
कहत राधे हौं ही स्याम ।
किसोर कुमकुम कौ सिंगार कीयें, सारी चुरी खुभी,
नेत्रनि दियें स्याम ॥
बाँह गहि लै चले, चलियै जू कुंज में,
चितें मुख हँसें, मानों एई स्याम ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
छाती सों छाती लगायें गौर-स्याम ॥

[५७] राग कल्यान[५]

प्यारी! तेरौ बदन चंद देखैं, मेरे हृदै सरोवर तें कमोदिनी फूली।
मन के मनोरथ तरंग अपार, सुंदर्यता तहाँ गति भूली॥
तेरौ कोप ग्राह ग्रसै लियें जात, छुड़ायौ नहिं छूटत,
रह्यौ बुधि बल गहि भूली।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा चरन बनसी सों काढ़ि रहे,
लटपटाइ गही भुज-मूली॥

[५८] राग कल्यान[६]

प्यारी! तेरौ बदन कनक कोकनद, स्रम जल-कन सोभा देत री।
तामें तिल दृष्टि परत ही, मन हर लेत री॥
उर तन जाति पाँति प्राननि कौं, कटि सों करि संकेत री।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी कहत अचेत री॥

[५९] राग कल्यान[७]

बचन दै, मान न करों।
मन-बच-क्रम तीनहूँ तें न टरों॥
तेरेही कियें मान व्याप होत तन, कहि कैसैं कै भरों।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
कहत री प्यारी कैसें कै लरों॥

[६०] राग कल्यान[८]

कुंजबिहारी नाँचत नीके, लाड़िली नँचावति नीके।
औघर ताल धरें श्री स्यामा, ताताथेई-ताताथेई, बोलत संग पी के॥
तांडव-लास और अंग को गनें, जे-जे रुचि उपजति जी के।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कौ मेरु सरस बन्यौ,
और रस-गुनी परे फीके॥

[६१] राग कल्यान[९]

डोल झूलत बिहारी-बिहारिनि, राग रमि रह्यौ ।
काहू के हाथ अघौटी, काहू के बीन, काहू के मृदंग,
कोऊ गहै तार, काहू कें अरगजा छिरकत रंग रह्यौ ॥
डांड़ी छाँड़ै खेल बढ़्यौ जु परस्पर, नहिं जानियत पग क्यौं रह्यौ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी कौ–
खेल खेलत काहू ना लह्यौ ॥

[६२] राग कल्यान[१०]

हमारौ दान मारयौ इनि ।
रातनि बेचि-बेचि जात, घेरौ सब सखा–
जान ज्यौ न पावें छियौ जिनि ॥
देखौ हरि के उज उठाइवे की, रात-विराति–
बहू-बेटी काहू की निकसति है पुनि ।
श्री हरिदास के स्वामो (स्यामा) की प्रकृति न फिरी–
छिया छाँड़ौ किनि ॥

[६३ [राग कल्यान[११]

गुन-रूप भरी विधना सँवारी, दुहूँ कर कंकन एक-एक सोहै ।
छूटे बार, गरैं पोति, दिपति मुख की जोति,
देखि–देखि रीझे लोहि प्रानपति, नैंन सलौनी मन मोहै ॥
सब सखि निरखि थकति भईं आली,
ज्यों-ज्यों प्रानप्यारौ तेरौ मुख जोहै ।
रस-बस करि लीने श्री हरिदास के स्वामी,
स्यामा ! तेरी उपमा कौं कहि धों को है ॥६३॥

[६४] [राग कल्यान[१२]

अजहूँ (तू) कहा कहति है री, मारैं नैंन आरनि ।
भौहें ज्यों धनुष, चितवनि बान-बाँफिनि,
फौंक धरें कहति स्याम प्यारनि ॥

तू ही अब जीवनि, तू ही भूषनि, तू ही प्रानधन यारनि ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी सों.
मेरु भयौ री बिहारनि ॥

[६५] [राग सारंग[१]

प्यारी तू गुननि-राइ सिरमौर ।
गति में गति उपजावति नाना, राग-रागनी तार मँदिर सुर घोर॥
काहू कछू लियौ रेख छाया, तौ कहा भयौ झूठी दौर ।
कहि हरिदास लेत प्यारी जू के तिरप, लागनि में किसोर ॥

[६६] [राग सारंग[२]

प्यारी ! तोपै कितौक संग्रह छबिन कौ,
अंग-अंग प्रति नाना भाइ दिखावति ।
हाथ किन्नरी मध्य सचुपाइ,
सुलप राग-रागिनीन सों तू मिलि गावति ॥
कहा कहौं एक जीभ, गुन अगनित,
हारि परचौ कछू कहत न आवति ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी कहत,
प्यारी जू जे-जे भाइ ल्यावति ॥

[६७] [राग सारंग[३]

परस्पर राग जम्यौ, समेत किन्नरी मृदंग सुर तार ।
तीन हू सुरन के तान-बंधान, धुर-धुरपद अपार ॥
बिरस लेत धीरज न रह्यौ, तिरप-लाग-डाट सुर मोरनि सार ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा जे-जे अंग की गति लेति,
अति निपुन अंग अंगहार ॥

[६८] [राग सारंग[४]

तोको पिय बोलत है री, लाल ठाड़े कदंब तर।
अबकें ऐसौ ज्यौं कियें कहा होत है री, मारि रही कुसुम सर ।।
कुंजबिहारी अपनौ अंस, तासों क्यौं कीजियै छदम वर।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा ढूँढत बन में,
पाई क्रम-क्रम करि बिषम डर ॥

[६९] [राग सारंग[५]

चलीय छबीली, छबीलौ बोलत।
आजु की बानिक पै तृन टूटत है,
कही न जाय कछु स्याम तोहि रत ।।
सखी लै चली मनाय, ज्यों हित की आई घत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी बीच ही आइ मिले,
तन की सुबास सकल भँवर कलमलत ।।

[७०] [राग सारंग[६]

बैनी गूंथि कहा कोउ जानें मेरी सी, तेरी सौं।
बिच-बिच फूल सेत-पीत-राते, को करि सकै री सौं ।।
बैठे रसिक सँवारन बारन, कोमल कर ककही सौं।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा नख-सिख लों बनाई,
दै काजर नख ही सौं ।।

[७१] [राग सारंग[७]

प्यारी ! तेरी पुतरी काजर हू तें कारी,
मानौ द्वै भँवर उड़े री बराबरि।
चंपे की डार बैठे कुंदन अलि, लागी है जेब अराअरि ।।
जब आन घेरत कटक काम कौ, तब जिय होत डराडरि।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
दोउ मिलि लरत झराझरि ।।

[७२] [राग सारंग[८]

स्यामकिसोर जू ! तुमको दोऊ रंग रंगित, पीतांबर चूनरी।
ऐसौ रूप कहाँ तुम पायौ, अहिरनिसि सोच उधेराबूनरी॥
मनमोहन सुरज्ञान-सिरोमनि, सब अंगनि अंग कोक निपून री।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा तुम्हारी विचित्रताई,
प्रेम सों पाईयत रस सून री॥

[७३] [राग सारंग[९]

चौकी कहाँ बदलि परी हो, प्यारे हरि !
लाल पाट की हुती, जंगाली ल्याए बरि ॥
वह तौ हुती हीरनि खचित,
पै यह दुरंग पन्ना-लालै मिलि लैहों लरि।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी की चतुराई रही भरि॥

[७४] [राग सारंग[१०]

आउ लाल, ऐसौ मद पीजै, तेरौ झगा मेरी अंगिया धरि।
कुच की सुराही, नैननि के प्याले, दारू देहुँगी यों अंकों भरि॥
अधरनि चवाइ लेउ सबरौ रस, तनिकौ न जान देउ इत-उत ढरि।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी की—
सुहबति असर जहाँ आपुन हरि॥

[७५] [राग सारंग[११]

डोल झूलत बिहारी-बिहारनि पुहुप-बृष्टि होति।
सुर-पुर पुर गंधर्व और पुर,
तिनकी नारि (देखति) बारति लर मोति॥
घेरा करति परस्पर सब मिलि, कहूँ देखी न जुबती ऐसी जोति।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारिनि
सादा चुरी खुभी पोति॥

[७६] [राग विभास[१]

प्यारी जू ! बोलति नाँहीं, कै तू सूता-उनींदी,
किधौं काहू कछु कह्यौ, कैं तेरौं ऐसौई सुभाव ।
मोहि तेरे देखे बिन कल न परै, कैं तू छाँड़ि कुभाव ॥
काहू की भुक हमें देति री, उपजत दुभाव ।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कहत, ताके बस परे प्रगटत जु भाव॥

[७७] [राग विभास[२]

आलस भीजे री नैन, जँभाति आछी भाँति सुदेस ।
कर सों कर टेकें अँगुरिन पेच,
मानों ससि-मंडल बैठ्यौ अति भाँति सुदेस ॥
मन के हरिवे कों और सुख नाहिनैं कोऊ,
प्यारी ! नख-सिख भाँति सुदेस ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
छाती सों छाती लगाएँ अंग-अंग सुदेस ॥

[७८] [राग विभास[3]

प्यारी जू ! एक बात कौ मोहि डर आवत है री,
मति कबहूँ कुमया करि जाति ।
पल - पल हित बंछत हौं री, मति परै भाँति ॥
यह सचु ऐसेंई रहौ री, जिनि टरौ तेरी घाति ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कहत,
यों बाढ़ौ ज्यों पुरइनि, जल की रीति तोही लों साँति ॥

[७९] [राग विभास[४]

प्यारी जू ! हम तुम दोऊ एक कुंज के सखा, रूठै क्यों बनै ।
ह्यां कोउ हितू मेरौ, न तेरौ, जो यह पीर जनै ॥
हौं तेरौ बसीठ, तू मेरौ, और न बीच सनै ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी कहत प्रीति पनै ॥

[८०] राग विभास[५]

चूनरी में जाड़ौ लागत है, कीजियै सुख-सैन ।
घरी-घरी कै रूसनें, पहर मनावत जात मीठे-मीठे बैन ।।
उठि सदिकें बलाइ लेहुँ, प्रकृति यों न चाहिये, धाइयै ज्यों मैन ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी लपटाइ रहे,
मानि सबै सुख चैन ।।

[८१] राग विभास[६]

दुहूँनि की सहज बिसाति, दोउ मिलि सतरंज खेलत ।
उर रुख नैन चपल अस्व, चतुर बराबर झेलत ।।
आतुरता फील, पयादे निग्रह, फरजी चौंप अनूपम मेलत ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, सह साह राखैं खेलत।।

[८२] राग विभास[७]

होड़ परी मोरनि अरु स्यामैंहि ।
आवहु मिलहु मध्य सचु की गति, लैंहि रंग धौं कामैंहि ।।
हमारे-तुम्हारे मध्यस्थ राधे, और जाहि बदौ बूझि देखौ,
तृन दै कहा है यामैंहि ।
श्री हरिदास के स्वामी कौ चौपरि कौ सौ खेल,
इकगुन-दुगुन-त्रगुन-चतुरागुन री जाके नामैंहि ।।

[८३] राग विभास[८]

कहौ यह का की बेटी, कहा है कुँवरि कौ नाँउ ।
तुम सब रहौ री, हौं ऊतर दै हौं,
चले क्यों न जाहु ढोटा ! बाइ बावरौ गाँउ ।।
सब सखि मिलि छिरका जु खेलन लागीं,
जौलौं तुम रहौ री, तौलौं हौं न्हाँउ ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी,
लै बुड़की गरें लागि, चौंकि परी कहाँ जाँउ ।।

[८४] राग विभास[९]

एक समैं एकांत बन में, डोल झूलत कुंजबिहारी।
झोटा देत परस्पर सब मिलि, अबीर उड़ावत डारी॥
कबहुँक वे उनकें, बे उनकें, हौं दुहुनि कें इक सारी।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी, बाढ़्यौ रंग भारी॥

[८५] राग विभास[१०]

कुंज-कुंज डोलनि, मृदु बोलनि,
टूटी लर, छूटी पोति, अति छबि लागत (सोभा अति लागत)।
भँवर गुंजार करत सँग डोलत,
मानौं मेरु रागिनी के संग लीएँ रागत॥
जूथ अनेक सुघर जुबतिनि के, तुम्हरी रीझि पलऽब नहिं लागत।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी पर—
तन-मन-धन न्यौछावरि करौं का गत॥

[८६ [राग बिलावल[१]

प्रिया-पिय के उठिवे की छबि बरनी न जाइ, सब तें न्यारे।
मानहु द्यौस-रैनि इकठौरे सोए, न भए न्यारे॥
बार लटपटे, मानो भँवर जूथ लरत परस्पर,
कमल-दलनि पर खंजरीट सोभा न्यारे।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी (बिहारिन) पर,
कोटि-कोटि अनंग, कोटि ब्रह्मांड बारि किये न्यारे॥

[८७] राग बिलावल[२]

स्यामा-स्याम आवत कुंजमहल तें, रँगमगे-रँगमगे।
मरगजी बनमाल, सिथिल कटि-किंकिनी,
अरुन नैन चारचौ जाम जगे॥

सब सखी सुघराई गावत, बीन बजावत,
सब सुख मिलि संगीत पगे।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी की–
कटाच्छ सों कोटि काम दगे॥

[८८] राग मलार[1]

हिंडोरेंऽब झूलत लाल, दिन दुलहिन-दूलह बिहारी देखौरी ललना।
गौर-स्याम छबि अति दुति, बहु भाँति री बल ना॥
नीलांबर-पीतांबर अंचल चलत, धुजा फहराति कल ना।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी–
बिहारिन अविचलना॥

[८९] राग मलार[2]

ऐसी रितु सदा-सर्वदा जो रहै, बोलत मोरनि।
नीके बादर, नीके धनुष, चहुँ दिसि नीकौ श्री वृंदाबन,
आछी-नीकी मेघनि की घोरनि॥
आछी भूमि हरी-हरी, आछी-नीकी बूंदनि की–
रैंगन काम करोरनि।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा के मिलि गावत,
राग मलार जम्यौ री किसोर-किसोरनि॥

[९०] राग मलार[3]

आये दिन पावस के सचु के, सु बोल बोलियै जू, मान न करि के।
घरी-घरी के रूसनें क्यों बनै, ते बोल बोलियै जू मन-क्रम-बच के॥
भयौ हैं बंधान बहुत जतननि करि, बिसरे गुन गस के।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी प्यारी बस के॥

[९१] राग मलार[४]

यह अचरज देख्यौ न सुन्यौ कहूँ, नवीन मेघ संग बीजुरी एक रस ।
तामैं मौज उठति अधिक, बहु भाँतिन लस ॥
मन के देखिबे कों और सुख नाँहिनै, चितवत चितहिं करत बस ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी—
बिहारिन जू कौ पवित्र जस ॥

[९२] राग मलार[५]

बूंदें सुहावनी री लागति, मति भीजै तेरी चूँनरी ।
मोहि दैं उतारि, धरि राखों बगल में तूँ न री ॥
लगि लपटाइ रहे छाती सों छाती—
ज्यों न आवै तोहि,बौछार की फूँन री ।
श्री हरिदास के स्वामी स्याम कहत, बीजुरी कौंधै करि हाँ, हूँ न री॥

[९३] राग मलार[६]

भींजन लागे री दोऊ जन ।
अँचरा की ओट करत दोऊ जन ॥
अति उनमत्त रहत निसि-बासर, राग ही के रंग रँगे दोऊ जन ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
प्रेम परस्पर नृत्य करत दोऊ जन ॥

[९४] राग मलार[७]

नदित मन मृदंगी, रास भूमि सुकांति अभिनै सु नव गति त्रिभंगी ।
धापि राधा नटति ललिता रसवती,
नागरी गाइ तेंग्रिनाभि तान तुंगी ॥
रसद बिहारी बंदे बल्लभा राधिका, निस-दिन रंग रंगी ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी संगीत संगी ॥

[९५] [राग मलार[८]

दामिनि कहत मेघ सों हमारी उपमा देहि ते झूंठे,
ऐई मेघ ऐई बीजुरी साँची।
जिन-जिन हमारी उपमा दीनी, तिन-तिन की मति काँची॥
ऐसी कहूँ सुनी जु बूंद तें कन न्यारौ,
ता पटतर क्यौं दीजै समुद्र राँची।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी की–
अटल-अचल प्रीति माँची॥

[९६] राग गौड़[१]

नाँचत मोरनि संग स्याम, मुदित स्यामाहिं रिझावत।
तैंसियै कोकिला अलापत, पपीहा देत सुर,
तैंसैई मेघ गरजि मृदंग बजावत॥
तैंसियै स्याम घटा निसि सी कारी,
तैंसियै दामिनी कौंधि दीप दिखावत।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
रीझि राधे हँसि कंठ लगावत॥

[९७] राग गौड़[२]

हरि के अंग कौ चंदन लपटानों तन, तेरें देखियत जैसें पीत चोली।
मरगजे आभरन बदन छिपावति,
छिपै न छिपायें मानों कृष्ण बोली॥
कहूँ अंजन कहूँ अलक रही खसि, सुरति रंग की पोटैं खोली।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा बिहारिन मिलत–
हार न रह्यौ कंठ बिच ओली॥

[९८] राग बसंत[1]

कुच गडुवा, जोबन मौर, कंचुकी बसन ढाँपि लै राख्यौ बसंत।
गुन मंदिर, रूप बगीचा में बैठी है, मुख लसंत॥
कोटि काम लावन्य बिहारी, जाहि देखैं सब दुख नसंत।
ऐसे रसिक श्री हरिदास के स्वामी,
तिनकों भरन आई मिलि हसंत॥

[९९] राग बसंत[2]

कुंजबिहारी कौ बसंत (सखि), चलहु न देखन जाँहि।
नव बन, नव निकुंज, नव पल्लव, नव जुबतिन मिलि माँहि॥
बंसी सरस मधुर धुनि सुनियत, फूली अंगन माँहि।
सुनि हरिदास प्रेम सों प्रेमहिं छिरकत छैल छुवाँहि॥

[१००] राग बसंत[3]

चलि री, भीर तें न्यारेई खेलें।
कुंज-निकुंज मंजु में झेलें॥
पंछिन सहित सखी न संग कोऊ, तिहिं बन चलि, मिलि केलें।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा, प्रेम परस्पर बूका-बंदन मेलें॥

[१०१] राग बसंत[4]

अब कै बसंत न्यारेई खेलें, काहू सों न मिलि खेलें, तेरी सौं।
दुचित भएँ कछू न सचु पईयत,
तू काहू सखी सों मिलि न, मेरी सौं॥
देखैंगी जो रंग उपजैगौ परस्पर,
राग-रागिनीन के फेराफेरी सौं।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
राग ही में रंग उपजैगौ एरी सौं॥

[१०२] राग बसंत[५]

रहौ-रहौ बिहारी जू, मेरी आँखिनि में बूँका मेलत हौ,
कित अंतर होत मुख अबलोकन कों।
और भाँवती तिहारी मिल्यौ चाहत मिसि कै,
पैयाँ लागौं पल-पल कों॥
गावत खेलत जो सुख उपजत, सु तौ कोटि बर है तन कों।
श्री हरिदास के स्वामी कौ मिलत खेलत कौ सुख–
कहाँ पाईयत, ऐसौ सुख मन कों॥

[१०३] [राग गौरी[१]

सौंधैं न्हाइ बैठी, पहिर पट सुंदर,
जहाँ फुलबारी तहाँ सुखवति अलकें।
कर नख सोभा कल केस सँवारति,
मानों नव घन में उड़गन झलकें॥
बिबिध सिंगार लियें आगै ठाड़ी प्रिय सखी,
भयौ भरुआनि रतिपति दल दलकें।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी की–
छबि निरखत, लागत नाँहीं पलकें॥

[१०४] [राग गौरी[२]

चलौ सखी कुंजबिहारी सों मिलि,
चित दै देखैं (हम) उनकी भाँवती।
सुंदर सों सुंदरि मिलि खेलत, कैसैं धौं गाँवती॥
औचक आइ परी सखी तहाँ, पिय पै पाँइ चँपावती।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी सों मिलि पौढ़ी,
तन-मन राँवती॥

[१०५] [राग गौरी[3]

राधा रसिक कुंजबिहारी खेलत फागु,
सब जुबती जन कहत हो-हो होरी।
भरत परस्पर, काहु को काहू न सुधि,
हँसिकै मन हरत मोहन गोरी ॥
कर सों करऽब जोरि, कटि सों कटिऽब भोरि,
करत नित्य काहू न रुचि थोरी।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा फिरत न्यारेई न्यारे,
सब सखियन की दृष्टि बचावत तकि तब खोरी ॥

[१०६] राग गौरी[4]

नवल निकुंज ग्रह नवल आगै, नवल बीना मध्य राग गौरी ठटी।
मनों दस इंदु पीऊष बरषत सुखद,
चपल करजावली द्रष्टि पिय की जटी ॥
रीझि-रीझि पिय देत भूषन-बसन-दाम,
उर रसन दसननि धरत, निरखि सारँग कटो।
रसद श्री हरिदास बिहारी अंग-अंग मिलत,
अतन उदोत करत सुरति आरंभटी ॥

[१०७] राग गौरी[5]

झूलत डोल दोऊ जन ठाढ़े।
हैं गति जोर सहित जैसीऽब, जाकें डाँड़ी गहें गाढ़े ॥
बिच-बिच प्रीति रहसि रस-रीति की,
राग-रागिनीन के जूथ बाढ़े।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
राग ही के रंग रँगि काढ़े ॥

[१०८] राग गौरी[१]

झूलत डोल श्री कुंजबिहारी।
दूसरी ओर रसिक राधावर नागरि नबल दुलारी ।।
राखें न रहत हँसत कह-कह प्रिया, बिलबिलात पिय भारी।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कहत री प्यारी,
अबकै राखि हा-हा री ॥

[१०९] राग नट[१]

कौन प्रकृति तिहारी, छियाँ तुमहिं मिलत बेगि भोर ह्वै जात।
अथबत निमेष होइ पौह फाटी, देखियत पहली सह मात ह्वै जात ॥
आवत जात भारौ परै, पीतौ भरि जात।
श्री हरिदास के स्वामी तुम्हारेई माथैं तृन कितौक सुख जात ।।

[११०] राग नट[२]

जुग कमनी बैस किसोर दोऊ निकसि ठाढ़े भए सघन बन तें।
तन-तन में बसत, मन-मन में लसत, सोभा बाढ़ी दुहुँ दिसि,
मानों प्रगट भई दामिनि घन-घन तें ॥
मोहन गहर गंभीर बदत पिक बानी–
उपजति मानों प्रिया के वचन तें।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा कुंजबिहारी ऐसौ को,
जाकौ मन लागै अनत मतें ॥

३. संदिग्ध पद

कीर्तन-संग्रहों और संगीत-ग्रंथों में हरिदास की छाप के अनेक पद मिलते हैं। इनमें से कुछ तो स्वामी हरिदास जी के हैं, किंतु अधिकांश अन्य हरिदासों के। प्राय: ऐसा समझा जाता है, 'श्री हरिदास के स्वामी श्यामा-कुंजबिहारी' की छाप के सभी पद स्वामी जी के हैं, जो 'सिद्धांत के पद' और 'केलिमाल' में संकलित मिलते हैं; किंतु इसी छाप के कुछ पद ऐसे भी मिले हैं, जो उक्त प्रामाणिक रचनाओं में नहीं हैं। उनके विषय में यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे स्वामी जी कृत हैं, या नहीं। उनकी शब्दावली को देखने से हमें वे प्रामाणिक पद नहीं जान पड़ते हैं।

ऐसे कतिपय संदिग्ध पदों को कीर्तन-संग्रहों में से छाँट कर यहाँ दिया जाता है। यह निश्चय होना आवश्यक है कि इनमें से किसी पद को स्वामी जी की रचना माना जाय या नहीं।

[१] राग केदारौ

निकसि कुंज तें ठाड़े, सरद-उजियारी कैसी नीकी लागे।
बरन-बरन फूल-फूलन के आभूषन, सोंधे भीजे बागे।।
गावत राग-रागनीन सों मिल मन मिल्यौ, राग केदारौ रागे।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, कछुक रजनी जागे[1]।।

[२] राग विहाग

ये दोऊ झूलत हैं, बाँह जोरें।
नवल कुंज के द्वारें देखो, रमकत हैं चहुँ ओरें।।
सप्त सुरन मिल मुरली बजावत, बिच-बिच तान लेत रस थोरें।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, छबि निरखत तृन तोरें[2]।।

---

१. कीर्तन संग्रह, भाग १ [लल्लूभाई देसाई], पृ० ३२६
२. कीर्तन संग्रह, भाग २ [लल्लूभाई देसाई], पृ० ३५४

[३] राग अड़ानी

चलो क्यों न देखें री, खड़े दोऊ कुंजन की परछाँहीं।
एक भुजा गहि डार कदम की, दूजी भुजा गलबाँहीं॥
छवि सों छबीली लपटि लटक रही,
कनक-बेलि तरु तमाल अरुझाँहीं।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, रँगे हैं प्रेम-रंग माँही[1]॥

[४] राग अड़ानौ

कुंज महल के आँगन डोलें दोऊ बाँहा जोटी।
कबहुँ चंद, कबहुँ प्यारी तन चितै रहत, पुन डग धरत छोटी-छोटी॥
कबहुंक कुसुम कर बीनत हैं, कलियाँ मोटी-मोटी।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, गुंहि-गुंहि बाँधत चोटी[2]॥

[५] राग केदारौ

मानिनी, मान निहोरौ।
हौं पठई तोहि लेन साँवरे, चल री! गर्व कर थोरौ॥
कुंज महल ठाड़े मनमोहन, चितवत चंद-चकोरौ।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी, चल री! होत है बेरौ[3]॥

[६]

जैसौ मोहि अपनपौ न लागत, तैसी तू मोहि लागत प्यारी।
सिर सोहै स्वेत सारी, फीकी लागत उजियारी,
तोसी तुही वृषभान की दुलारी॥
हम का कहत तुम्हीं क्यों न देखो, यों क्यों भाखत कुंबिहारी।
श्री हरिदास के स्वामी स्यामा-कुंजबिहारी,
प्यारे की ओर निहारत प्यारी[4]॥

---

१. कीर्तन संग्रह, भाग ३ [लल्लूभाई देसाई], पृ० १८६
२. कीर्तन संग्रह, भाग ३ [लल्लूभाई देसाई], पृ० १८६
३. कीर्तन संग्रह, भाग ३ [लल्लूभाई देसाई], पृ० २००
४. रा० स०, पृष्ठ ६८

तृतीय परिच्छेद
हरिदासी अष्टाचार्य और उनकी वाणी

स्वामी श्री हरिदास जी के पश्चात् जो अष्टाचार्य हुए, वे सभी रसिक भक्त और परम विरक्त होने के साथ ही साथ वाणीकार भी थे। उनके जीवन-वृत्त और उनसे संबंधित तिथि-संवत् की यथेष्ट जानकारी के लिए 'निज मत सिद्धांत' ही एक मात्र आकर ग्रंथ है। उसी के आधार पर श्री सहचरिशरण जी कृत 'ललित प्रकाश' में और फिर श्री बिहारीशरण द्वारा संपादित 'श्री निंबार्क माधुरी' में तद्विषयक उल्लेख किये गये हैं। यहाँ पर उक्त आचार्यों का संक्षिप्त परिचय और उनकी कतिपय वाणियों का संकलन प्रस्तुत किया जाता है।

१. श्री विट्ठलविपुल

श्री विट्ठलविपुल जी अपनी भक्ति-भावना, वैराग्यवृत्ति और साधना की दृष्टि से स्वामी जी के उपस्थित भक्तों में सब से अधिक योग्य थे। वे वयोवृद्ध भी थे, अतः उन्हें स्वामी जी का उत्तराधिकारी बनाया गया था। हरिदासी संप्रदाय के अष्टाचार्यों में श्री विपुल जी प्रथम आचार्य माने जाते हैं।

ऐसा कहा जाता है, वे स्वामी हरिदास जी के ममेरे भाई थे और आयु में उनसे कुछ बड़े थे। उनके जन्म-संवत् के संबंध में कोई निश्चित बात नहीं कही जा सकती है। इतना निश्चय है, वे स्वामी जी के पश्चात् केवल कुछ दिनों तक ही जीवित रहे थे।

'निज मत सिद्धांत' में स्वामी जी के पश्चात् उनकी विद्यमानता केवल आठ दिनों की लिखी गई है[1]। उक्त ग्रंथ के अनुसार उन्होंने शतायु प्राप्त की थी। वे तीस वर्ष तक घर पर रहे थे। उसके बाद वे अगहन शुक्ला पंचमी को स्वामी जी के चरणाश्रित होकर सत्तर वर्ष तक विरक्तावस्था में वृंदाबन में रहे थे। उनका देहावसान कार्तिक कृ० ७ को हुआ था[2]।

उनके विषय में यह किंवदंती प्रसिद्ध है कि स्वामी जी के देहावसान के अनंतर उन्होंने अपने नेत्रों से इसलिए पट्टी बाँध ली थी, कि जिन आँखों से स्वामी जी का दिव्य स्वरूप देखा है, उनसे अब और किसी को नहीं देखना है। एक बार रास में उन्हें नेत्र खोलने को वाध्य होना पड़ा; किंतु उन्होंने तत्काल अपना शरीर त्याग दिया था !

उनकी उपासना की पुष्टि स्वामी जी के सत्संग में हुई थी; अत: वे श्यामा-कुंजबिहारी के दिव्य केलि-रस के वास्तविक अधिकारी थे। उनकी रचना के रूप में केवल ४० पद प्राप्त हैं। यह स्वल्प रचना भी ब्रजभाषा भक्ति साहित्य की अमूल्य निधि है।

---

१. श्री गुरु पीछें अष्ट दिन, निज तन धारन कीन।
श्रीयुत बीठलविपुल सम, को अस परम प्रबीन ॥

—**आचार्य खंड, पृ० १३०**

२. अगहन शुक्ल पंचमी आई। ता दिन भये बिपुल शरणाई ॥
वर्ष एक सै निज तनु धारचौ। अंत समय गुरु संग विचारचौ।
तीस वर्ष गृह में करि बासा। तदनंतर वैराग्य प्रकासा ॥
सत्तर वर्ष कीन बैरागा। श्री हरिदास चरण अनुरागा।
कातिक वदि सातै दिन आयौ। विपुल त्याग तनु श्री बन पायौ ॥

—**अवसान खंड, पृ० ३**

श्री विट्ठलविपुल की वाणी

[१] राग विभास[1]

आजु बनी लाड़िली, प्रीतम संग आवति ।
सोंधें भीजी लट छूटी पिय के अंस भुज,
पाछै सखी सुघर बिभासहिं गावति ।।
स्रम जल बिंदु निसि के सुख सूचत,
मोहन बदन सों बदन मिलावति ।
श्री बीठलबिपुल कल रसिक बिहारीलाल,
आनंद-समुद्र मथि मदन झिलावति ।।

[२] राग विभास[2]

आई भोर भएँ प्यारी छूटी लट बगरी ।
बाँह जोरी लाल संग, निसि किये कुंज रंग,
सुबस किये बिहारी कुँवरि अचगरी ।।
निस के चिह्न फबे गौर-स्याम तन छबि,
पद-नख पर बारों जेती केती नगरी ।
श्री बीठलबिपुल केलि, मनहुँ कंचन-बेल-
अरुझी स्याम तमाल आवै कुंज डगरी ।।

[३] राग विभास[3]

प्यारी ! तेरी चाल-चितबनि बाँकी ।
बाँके बसन, आभरन बाँके, बंक रेख उर आँकी ।।
बंक सुभाव, मिलन बाँकी, प्रिया बंक कोर रहि झाँकी ।
श्री बीठलबिपुल बिहारी बाँके मिले, तातें तू फिरत निसाँकी ।।

[४] राग बिलावल[1]

रसिक रसीली भाँति छबीली, नैन रँगीले तू पिय पै तें आई।
अलक कंचुकी छूटी, चारि-चारि चूरी फूटी,
आलस मदन लूटी, लेत जँभाई॥
कहा रही मुख मोर, नागरि नव किसोर,
तून टूटत हो हो होरी लनन बनाई।
श्री बीठलबिपुल बेख, उर बनी नख-रेख,
रजनी के अवसेस जानि मैं पाई॥

[५] राग बिलावल[2]

स्यामा चलहु लडैती प्रिया, कुंजनि करहु केलि।
स्याम तमाल लाल, नबलकिसोरी बाल,
तुम जु नबल नव कनक-बेलि॥
बिबिध कुसुम घन, रचित श्री वृंदाबन,
बोलत सुहाए पिक-मधुप रहे हैं झेलि।
श्री बीठलबिपुल रस, बिहारी तिहारे बस,
जमुना के तीर सुख बिसद बिलास खेलि॥

[६] राग बिलावल[3]

आवत लाडिली-लाल फूले।
कुंज केलि नव रंग बिहारी, सुरति हिंडोरे झूले॥
निसि जागे अलसात रगमगे, पट पलटे गति भूले।
श्री बीठलबिपुल पुलकि ललितादिक, दिन देखत द्रुम मूले॥

[७] राग बिलावल[4]

आवनि कुंज तें पह-पीरी।
प्रिया जँभाति कर जोरि रसमसी, ललन खबावत बीरी॥
सुरति स्रमति अँग-अंग सिथिल अति, भुज भरि स्याम रसी री।
श्री बीठलबिपुल बिनोद करत मिलि, नहिं ललितादिक नीरी॥
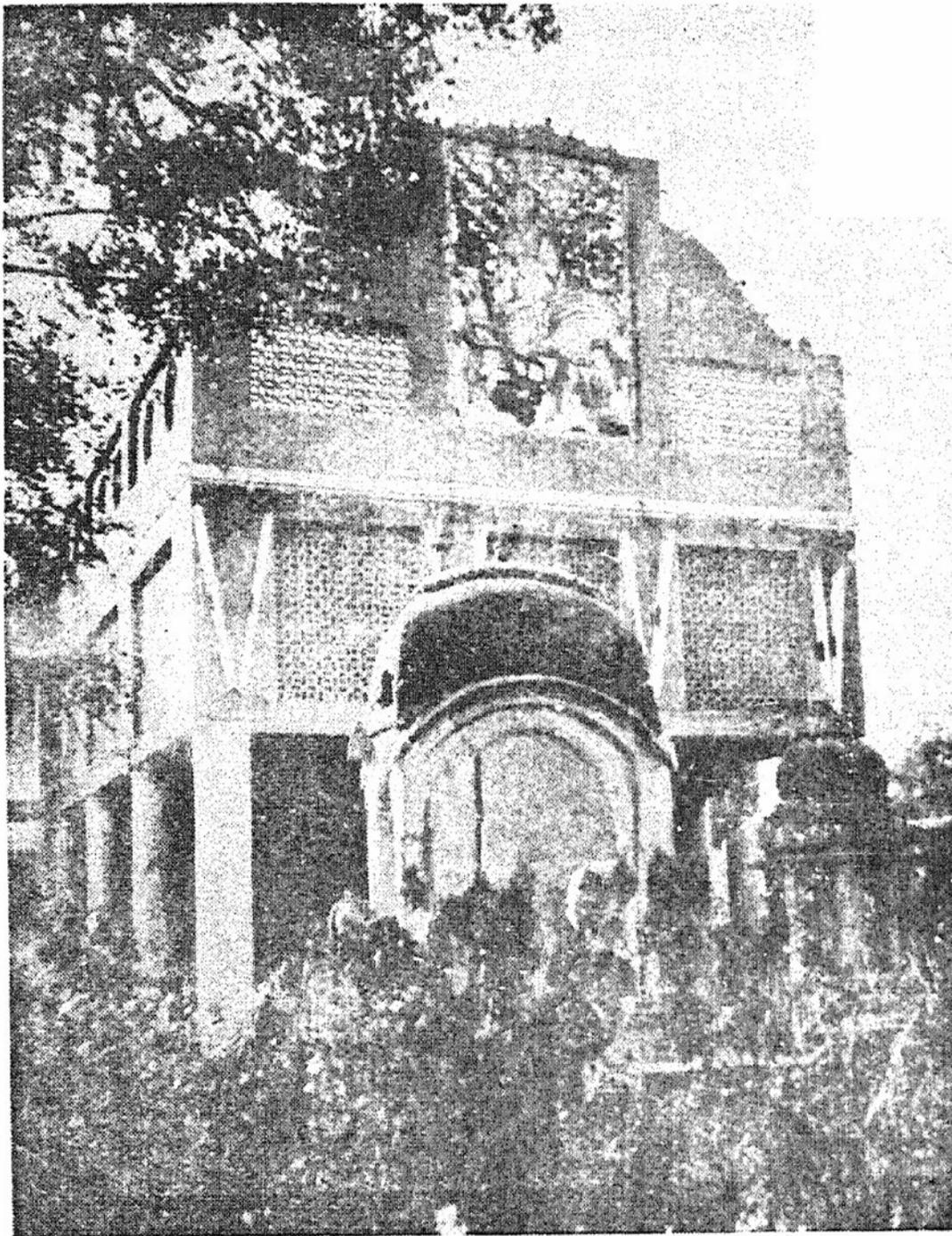
निधिवन (वृंदावन) में स्वामी हरिदास के समाधि-स्थल का अग्रद्वार
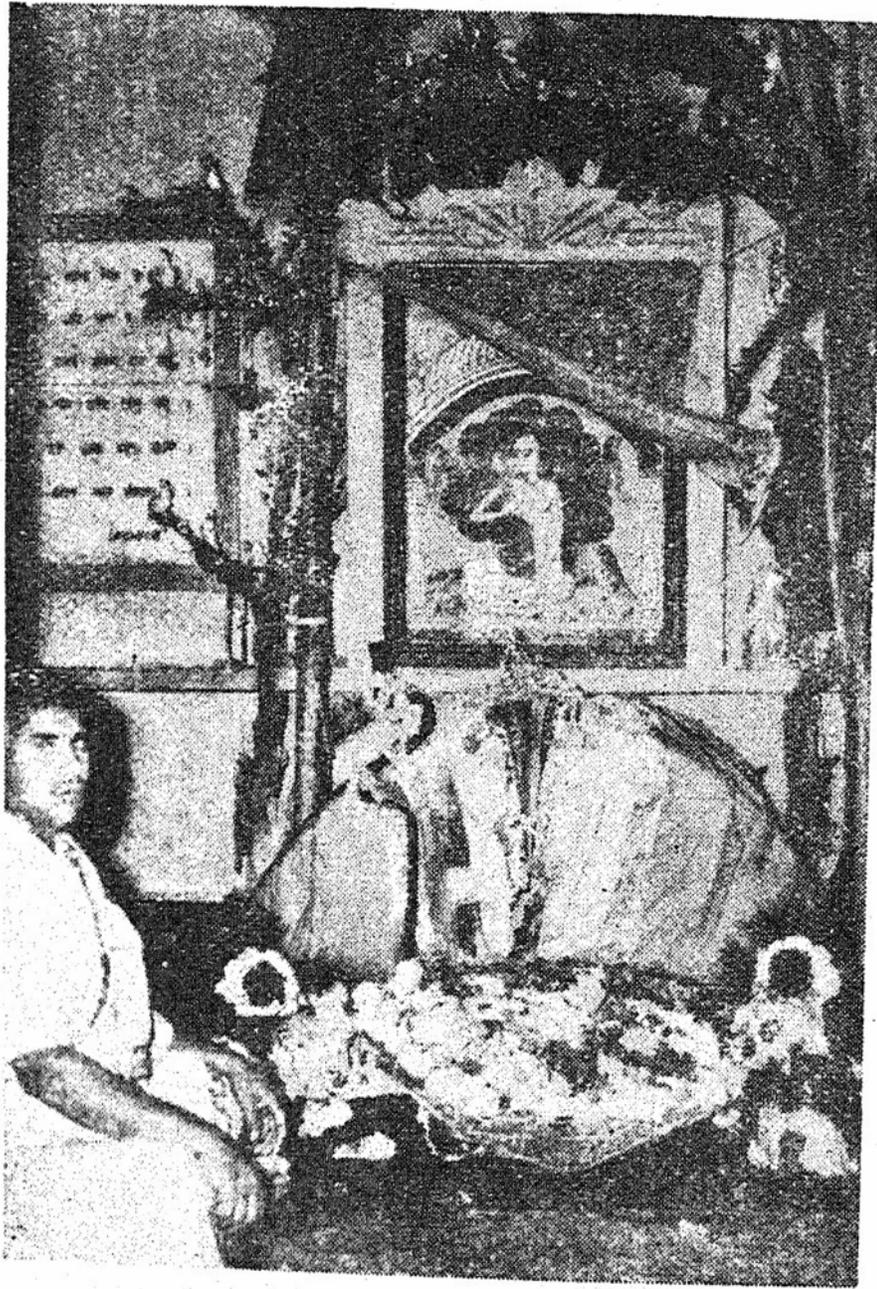
निधिबन (वृंदाबन) में स्वामी हरिदास की समाधि

२. श्री बिहारिनदास

श्री बिहारिनदास श्री विट्ठलविपुल जी के शिष्य और उनके उत्तराधिकारी थे। स्वामी हरिदास जी और श्री विपुल जी का काल अनिश्चित होने से श्री बिहारिनदास के यथार्थ काल के निश्चय करने में भी बाधा उपस्थित होती है। 'निज मत सिद्धांत' में श्री बिहारिनदास के जन्म और देहावसान के संवत् क्रमशः १५६१ और १६५६ लिखे गये हैं[1]। श्री हरिराम जी व्यास ने श्री बिहारिनदास की विद्यमानता का उल्लेख किया है[2]; किंतु उनके देहावसान जनित विरह का कथन नहीं किया, जैसा उन्होंने अन्य महात्माओं के संबंध में किया है[3]। श्री व्यास जी सं० १६६६ तक विद्यमान थे; तब तक श्री बिहारिनदास के भी जीवित रहने का अनुमान किया जा सकता है।

श्री बिहारिनदास का पिता मित्रसेन सम्राट अकबर का उच्च कर्मचारी था। वह शूरध्वज ब्राह्मण था। उसके कोई पुत्र नहीं होता था। ऐसा कहा जाता है, स्वामी हरिदास के आशीर्वाद से मित्रसेन के पुत्र रूप में बिहारिनदास जी उत्पन्न हुए थे। उनका जन्म दिल्ली में हुआ था। मित्रसेन का देहावसान होने पर सम्राट अकबर ने बिहारिनदास को उसके स्थान पर नियुक्त कर दिया था; किंतु वे वैराग्य प्रिय होने के कारण वहाँ न रह सके और

---

१. प्रथम बिहारिनदास कौ, सुनौ जन्म सुख-सार।
संबत पंद्रह सै अधिक, इकसठ वर्ष विचार॥
सोरहसै उनसठ की साला। अगहन शुक्ल तीज तिहिं काला॥
ता दिन करि सबकौ सनमाना। भए त्यागि तन अंतरध्याना॥
—अवसान खंड, पृ० १०३

२. भक्त-कवि व्यास जी, पृ० १९५ ३. वही पृ० १९६

राजकीय सेवा छोड़ कर वृंदाबन चले गये। वहाँ पहुँच कर उन्होंने श्री विट्ठल विपुल जी से हरिदासी मत की दीक्षा ली। 'निज मत सिद्धांत' के अनुसार बिहारिनदास जी ३३ वर्ष तक घर पर और ६५ वर्ष तक वृंदावन में रहे थे[1]।

अपने गुरु श्री विपुल जी के पश्चात् श्री बिहारिनदास उनके उत्तराधिकारी हुए थे। वे हरिदासी संप्रदाय के आचार्यों में प्रमुख माने जाते हैं। उन्होंने पर्याप्त परिमाण में वाणी-रचना की है। उनके रचे हुए प्रायः ७०० साखी के दोहे और प्रायः २०० सिद्धांत के पद हैं। इनके अतिरिक्त उन्होंने प्रायः ४०० पद शृंगार के भी लिखे हैं। इस प्रकार अष्टाचार्यों में उनकी रचना का परिमाण सबसे अधिक है। उनकी रचनाओं में स्वामी जी की वाणी का स्पष्टीकरण मिलता है, अतः इनका सांप्रदायिक महत्व भी विशेष है। व्यास जी की तरह इनकी रचनाओं में स्पष्टवादिता है, तथा वह उपदेशप्रद, मार्मिक और भावपूर्ण हैं। उनके दोहे ज्ञान, वैराग्य, नीति और शिक्षा के कोश हैं, तथा उनके पद दिव्य शृंगार रस से ओत प्रोत हैं।

श्री बिहारिनदास की वाणी

* सिद्धांत की साखी *

रसिकन तें ऐंठे फिरें, बिमुखन भेटत धाय।
ऊँट कपूर न सूँघई, टेढे काँटे खाय ॥१॥
काँध कफन की पाँमरी, हाथ गहन की गोल।
देखें-सुनें न भावहीं, ये छुतिहनि के बोल ॥२॥

---

१. नव्वे आठ वर्ष तनु धारचौ। गृह मधि तीस तीन विस्तारौ॥
पेंसठ वर्ष विपिन मधि बासा। कीनों नित्य बिहार प्रकासा॥
—अवसान खंड, पृ० १०३

सती संकलपि सर चढ़ै, तुला तोलियत हाड़ ।
ता दानें साध न ग्रहै, ग्रहै तौ जानौ राँड़ ॥३॥

बिमुख न काहूँ मुख सुन्यौ, कबहूँ न तन सिंगार ।
परमारथ परस्यौ नहीं, बहिकाये ब्यौहार ॥४॥

पायें लाख बिमुख दुखी, तजत न दारिद द्वार ।
श्री बिहारीदास सब दिन सुखी, जाकै भजन बिहार॥५॥

भक्त भक्ति कै बल बड़ौ, साकत बित इतराइ ।
यह बढै भजन दिन नित नवौ, वह निघट गये बिललाइ ॥६॥

भक्त भक्ति करि नित नयौ, साकत प्राकृति लीन ।
यह रातौ मातौ चकचकौ, वह दुखी दरिद्री दीन ॥७॥

यातें छाँडी टोंडकी, चलि चलि चितबत छाँहि ।
श्री बिहारीदास सुख संग्रह्यौ, निपट गरीबी माँहि ॥८॥

गूदरी मेरी नित नई, फाटि गई चौतार ।
इहि परमारथ पाइयै, वे काढत मरें उधार ॥९॥

पग नाँगे, गूदर गरे, तन दूबरे सिंगार ।
श्री बिहारीदास उपासत सबै, भूप मुकट मनिहार॥१०॥

भक्त भक्ति करि पूजियै, साकत कै मन पीर ।
यह मान-ग्रपमान न जानई, वह जुर जरै जरीर ॥११॥

साकत संग न जाइयै, जो सोंने कौ होय ।
साधिक सिद्धिनि कों गनें, किते गये गथ खोय ॥१२॥

साकत संग न जाईयै, जौरु बडौ बिद्वांस ।
सींचत ग्ररँड करेंडुवा, होय न भाल गबांस ॥१३॥

साकत कै घर पाहुँनौं, भूभि भक्त जिनि जाहु ।
श्री बिहारीदास बिपतौ भली, बर मांस स्वान कौ खाहु॥१४॥

* रस की साखी *

चाँपत चुपरत सेज पर, श्री बिहारीदास सुख मौन।
ठोड़ी सों एड़ी लगी, यह सुख समझै कौन ॥१॥

यों बोलियै न डोलियै, टहल महल की पाइ।
श्री बिहारिनिदासि अंग-संगनी, कहत सखी समुझाइ॥२॥

स्वास समुझि सुर बोलियै, डोल नैन की कोर।
मैननि चैन न पावही, बिहरें जुगल किसोर ॥३॥

इहि रस प्रान बिबस भए, तिनहिं न रुचै सिंगार।
भूख प्यास में चपनई, आदर बडौ प्रहार ॥४॥

बुरौ सिंगार बिहार में, भूखन दूखन जानि।
श्री बिहारीदास सेबत सुखें, मन कौ मरम पिछानि ॥५॥

गहनौ तौ सब तन गह्यौ, गहनौ जाकौ नाव।
मोहि गहावें और पै, हौं गहनें न पत्याव ॥६॥

हौं प्रीतम तन-मन गही, मो पिय मनसा प्रान।
तू बैठी गहनौ गुहै, तेरौ कौन सयान ॥७॥

मेरौ गहनौ और है, निजु अंग संग सिंगार।
नैनन कौ अंजन यहै, सब सुख सार बिहार ॥८॥

श्री बिहारीदास औसर समझि, इनहि न अनुसंधान।
भोजन इहै बिहार में, दरस परस अघ्रान ॥९॥

एक मूल अस्थूल लैं, द्वै सकंध सम बैस।
सेवति सखी सघन सबैं, जान समौ जैसौ जैस ॥१०॥

फूलत फलत सदा रहत, प्रेम जु निजु जन देत।
श्री कुंजबिहारिनिदासि सुनि, सहज प्रिया के देत ॥११॥

[१] [राग बिलावल

हरि ! भली करी, प्रभुता न दई ।
होते पतित अजित इंद्री-रत, तब हम कछु सुमत्यौ न लई ॥
डहकायौ बहु जन्म गवायौ, कर कुसंग सब बुधि बितई ।
मान-अमान भ्रम्यौ भक्तन तन, भूलि न कबहूँ दृष्टि गई ॥
पढ़ि-पढ़ि परमारथ न विचार्‌यौ, स्वारथ बक-बक विष अँचई ।
लै-लै उपज्यौ सफल वासुता, जो जिहि जैसी बीज बई ॥
अब सेवत साधुन को सतसँग, सींचत फूले मूल जई ।
'बिहारीदास' यों भजै दीन ह्वै, दिन-दिन बाढ़ै प्रीति नई ॥

[२] [राग बिलावल

अधम किए अभिमान गयौ ।
अपने नासन सकुच भूल, ऊँचे पर पगन पयौ ॥
को जानें कैसी प्रतीति तब, कहा समझि तो यह समझ्यौ ।
गर्वंत कहा जीव बपु राजै, विजय-धाम तें डार दयौ ॥
भावै सिद्ध जो साधु कहत हैं, उपजे है सोई जु बयौ ।
'बिहारीदास' हरिदास कृपा ते, आपन ही अपनाय लयौ ॥

[३] [राग बिलावल

हरि-जस बिन को भयौ सपूत ।
सब जस अपजस बिन वृंदाबन, किए सगाई सूत ॥
हरिदासन कौ संग न सेवत, तिनसे कौन कपूत ।
पंडित गुनी चतुर अभिमानी बड़ौ भरम आकूत ॥
साकत सूत सो जो ममता करैं, जाए जान अपूत ।
दोष लगै ताको महतारी, बाप मुगल कौ मूत ॥
सबै सयान अयान जानि हित, आप अपनपौ धूत ।
'बिहारीदास' भये धन ह्वै हैं, भजन अनन्य अभूत ॥

[४] [राग बिलावल

पाँड़े पढ़-पढ़ाय बक बहके ।
परमारथ सपने नहिं सूझौ, स्वारथ ही कों सहके ॥
उपजत नहीं विवेक साँच बिन, झूठहिं लालच लहके ।
सहि न सकत उत्कर्ष और कौ, मन-मत्सर चित चहके ॥
जीवत मरत रहत संसय मन, मेंडुक कालीदह के ।
गए नियराय निघट बिन बायहि, ज्यों बादर पोरी पह के॥
औरन के गुन-दोष गनत सठ, अपने गुन सुनि गहके ।
'बिहारीदास' तिनके संग तजि, जे तृष्ना-डायन डहके ॥

[५] [राग विभास

प्रात समय नव कुंज द्वार पैं, ललिता ललित बजाई बीना ।
पौढ़े सुनत स्याम श्री स्यामा, दंपति चतुर प्रबीन प्रबीना ॥
अति अनुराग सुहाग परस्पर, केलि-कला निपुन नबीन नबीना ।
'बिहारीदास' बलि-बलि दंपति पर, मुदित प्रान न्यौछावर कीना ॥

[६] [राग सारंग

अँखियाँ लाल की ललचौहीं ।
इत उत चितैं हँसत सकुचत से, पुनि बात कहत गहि गौहीं ॥
नैन-स्रवन-नासा अवलोकत, भाल तिलक दरसौहीं ।
'बिहारिनिदासि' स्वामिनि रस वर्षत, यह सुख समुझत हौंहीं ॥

[७] [राग केदारौ

जोरी अद्भुत आज बनी ।
बारौं कोटि काम नख छबि पर, उज्ज्वल नील मनी ।
उपमा देत सकुच निर-उपमिन, घन-दामिनि लजनी ॥
करत हास-परिहास प्रेमजुत, सरस बिलास सनी ॥
कहा कहौं लावन्य रूप-गुन, सोभा सहज घनी ।
'बिहारिनिदासि' दुलरावत, श्री हरिदास कृपा बरनी ॥

३. श्री नागरीदास

ब्रज साहित्य के भक्त-कवियों में नागरीदास नाम के कई महात्मा हुए हैं। उनमें बड़े नागरीदास, नेही नागरीदास और राजा नागरीदास अधिक प्रसिद्ध हैं। बड़े नागरीदास हरिदासी संप्रदाय के तथा नेही नागरीदास राधावल्लभीय संप्रदाय के महात्मा थे और वे दोनों समकालीन थे। हरिदासी नागरीदास अपने संप्रदाय के अन्य महात्मा सरसदास के बड़े भाई थे; और वे नेही नागरीदास से भी आयु में अधिक थे; अतः वे 'बड़े नागरीदास' के नाम से अपने समय में ही अधिक प्रसिद्ध हो गये थे। उनके गुरु श्री बिहारिनदास थे[1]।

'निज मत सिद्धांत' के अनुसार नागरीदास जी का जन्म सं० १६०० की माघ शु० ५ को हुआ था। वे २२ वर्ष की आयु मे बंगाल से ब्रज आये थे और ४८ वर्ष तक वृंदाबन में रहे थे। इस प्रकार ७० वर्ष की आयु में सं० १६७० की वैशाख शु० ६ को उनका देहावसान हुआ था[2]।

नागरीदास और उनके छोटे भाई सरसदास बंगाल के राज्यमंत्री कमलापति के पुत्र थे। वे जाति के गौड़ ब्राह्मण थे।

---

१. शिष्य बिहारिनदास के, बड़े नागरीदास। [**निज मत सिद्धांत**]

२. संबत सोरहसै तनु धारयौ। माघ शुक्ल पंचमी विचारयौ॥

विराजमान सत्तर बरस, गृह मधि बीस अरु दोय।
विपिन सु अड़तालीस बसि, तिन सम तें नहिं कोय॥

संवत्सर सोरहसै सत्तर। तब लौं रह्यौ सरीर प्रेम भरि।
वदि बैसाख सु नौमी आई। तनु तजि निज स्वरूप मिल जाई॥

—अवसान खंड, पृ० ६४–६५

उनका पिता श्री बिहारिनदास का अत्यंत भक्त था। उसने अपने दोनों पुत्रों की रुचि भक्ति और वैराग्य की ओर जानकर उन्हें युवावस्था में ही वृंदाबन भेज दिया था। वे वहाँ पहुँच कर बिहारिनदास जी के शिष्य हो गये और दिन-रात भजन, ध्यान तथा भगवद्भक्ति में लीन रहने लगे।

उन्होंने दोहा, सवैया आदि छंदों में रचना की है, जो अधिक परिमाण में नहीं है। उनके २० साखी के दोहे और ७० शृंगार के पद हैं, जो सिद्धांत और सरसता की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उनकी भाषा शुद्ध ब्रज है और उसमें प्रवाह है। वाणी के अतिरिक्त उन्होंने 'केलिमाल' की विस्तृत टीका भी की है।

श्री नागरीदास की वाणी

[१] राग विभास[1]

आवत रंग भरे दोऊ गावत।
कुंज-कुंज सुखपुंज प्रिया-पिय, प्रेम परस्पर मोद बढावत॥
सहज सप्त सुर उमँगि-उमँगि उर, तान-तरग रंग उपजावत।
पुलकि-पुलकि तन उदित मगन मन,
सहज सुघर बर रीझ रिझावत॥
सुखद सुरति-रति अति अनुपम गति,
रसिक सखी हित सुख बरषावत।
श्री बिहारी बिहारिनिदासि सुखद संग,
नवल नागरीदास मन भावत॥

[२] राग बिभास[2]

देखि सखी बिहरत दोऊ प्रीतम, नव निकुंज नव-नव कल केलि।
खेलत हँसत लसत बदननि बिबि, अंसनि अंस भुजा मृदु मेलि॥

सुरत अंत अरसात गात, लपटात सरस सौरभ रस झेलि।
श्री नागरीदासि बलि नव तमाल,
पिय-प्यारी सरस कनक नव बेलि ॥

[३] राग विभास[3]

बैठे नव निकुंज मंदिर में, गावत राग विभास प्रबीन।
नव किसोर चितचोर भोर, प्यारी अतिहीं सरस बजावत बीन ॥
कोक निपुन गुन सुघर लाड़िली, पियहिं रिझै रस बस करि लीन।
श्री नागरीदास बलि-बलि ललितादिक,
फूलत दिन देखि रसिक नबीन ॥

[४] राग विभास[4]

झूलत डोल नवल स्याम प्रिया इत गोरी।
नव निकुंज रंग महल अति विचित्र बनी यह जोरी ॥
भृकुटि कटाच्छ निहारत नैननि, बैन बदत चित चोरी।
गावत तान तरंग अनंगनि, रीझि कहत हो-हो होरी ॥
डाँड़ी छाँड़ि खेल करत, परिरंभन चुंबन देत निहोरी।
कच कुच कर कंचुकि रस परसत, बिहरत कुँवर किसोरी ॥
नव सहचरी अति अनुराग उड़ावत, बूका बंदन रोरी।
निरखि नागरीदास दंपति छबि, बिपुल प्रेम भई भोरी ॥

[५] राग बिलावल[1]

बिहारिनि लाड़िली सुख-रासि।
रूप अनुपम महा मन मोहनी, सहज छबीली हासि ॥
अँग-अँग अनंग रंग स्याम रँग, बिलसत मननि हुलासि।
इहि रस मत्त मगन अनुदिन, बलि जाय नागरीदासि ॥

४. श्री सरसदास

श्री सरसदास भक्तवर श्री नागरीदास के छोटे भाई थे। वे बंगाल के राज्य मंत्री कमलापति के छोटे पुत्र थे। वे भी नागरीदास जी की तरह श्री बिहारिनदास जी के शिष्य हुए थे। वे परम भक्त, श्यामा-श्याम के अनन्य उपासक तथा संतों एवं रसिक जनों के सर्वस्व थे।

'निज मत सिद्धांत' के अनुसार उनका जन्म सं० १६११ की आश्विन पूर्णिमा को हुआ था। वे ३० वर्ष तक घर पर रह कर ४२ वर्ष तक वृंदाबन में रहे थे। इस प्रकार ७२ वर्ष की आयु में सं० १६८३ की श्रावण शु० १५ को उनका देहावसान हुआ था[1]। वे श्री बिहारिनदास जी के पश्चात् २४ वर्ष तक जीवित रहे थे। हरिदासी संप्रदाय के आचार्यों में उनका नाम अपने विनम्र स्वभाव और सत्संगप्रेमी होने के कारण प्रसिद्ध है।

वे सिद्ध कोटि महात्मा थे। उनके विषय में कहा जाता है कि उन्होंने अपने उत्तराधिकारी नरहरिदास का नाम बिना परिचय के ही घोषित कर दिया था। उनकी भविष्य वाणी अंत में अक्षरशः सत्य हुई थी।

---

१. सोरहसै इकदस की साला। क्वार मास पून्यौ सुख काला॥
सरद चंद पूरन ह्वै आयौ। सरसदेव कौ जन्म सुहायौ॥
वर्ष बहत्तर धरि सुभ देहा। तीस वर्ष लौं बसे सु गेहा॥
द्वै चालीस वर्ष बनवासा। कीनौं निज गुरु धर्म प्रकासा॥
संवत सोरहसै तेरासी। निज तनु त्यागि भये सुख-रासी॥
सावन सुदि पून्यौ तनु त्यागौ। सरसदेव निज बपु अनुराग्यौ॥

—**अवसान खंड, पृ० १०५**

उनकी वाणी में कवित्त, सवैया और पद मिलते हैं, जो परिमाण में नागरीदास जी से भी कम हैं। उनकी भाषा में ब्रज के साथ ही साथ अन्य क्षेत्रीय बोलियों तथा फारसी के भी कुछ शब्द हैं। इनसे उनकी बहुज्ञता तथा विद्वता प्रकट है।

श्री सरसदास की वाणी

[१] राग केदारौ

राजत नव निकुंज नव जोरी।
सुंदरस्याम रसीले अँग-अँग, नवल कुँवरि तन गोरी ॥
बदन माधुरी मदन-सदन सुख-सागर नागर कुँवर-किसोरी।
'सरसदास' नैनन सचुपावत, कौतुक निपट निबोरी ॥

[२] राग केदारौ

मदन कुंज सुख पुंज गुंज अलि, द्वै जन खेल बढ़्यौ सुखदाई।
भूषन-बसन कसन न्यारे प्यारे मिलि सब केलि करत मनभाई ॥
अँग अँग संग रंग मुख उपजत, मानों ओढ़नी दुरंग ओढ़ाई।
करत बिहार बिहारी-बिहारिनि, 'सरसदास' नैननि मुसकाई ॥

[३] राग विहागरौ

सोंधे सहज सगबगी अलकैं।
बिथुरी सुखद बदन पर सोभित, आनंदित अँग झलकैं ॥
कौतुक रासि लाड़िली पिय के, बढ़ी मदन मन ललकैं।
'सरस' सुख्याल निहाल लाल मुख निरखत लगत न पलकैं ॥

[४] राग मलार

झूलत दोऊ नवल हिंडोलें।
बिमल पुलिन कल कमल कुंज मधि, चितवत नैंन सलोलें ॥
जोबन-जोर झकोरन देत, आलिंगन करत कलोलें।
'सरसदासि' सुख-रासि रहसि नव, सुनत मधुर मृदु बोलें ॥

[५] राग मलार

झूलत फूलत सुरति हिंडोरे ।
पुलक-पुलक किलकत हिलमिल मन, जोबन जोरि झकोरै ।
छूटी लट, पट सिथिल भए, अंग अनंगन रोरै ॥
रहसत वहसत हँसत परस्पर, उर कर चिबुक टटोरै ।
अति रस भरे, खरे डाँड़ी गहें, चितवत विवि मुख ओरै ।
'सरसदास' दरसत विलास नित, अति चंचल चित चोरै ॥

[६] राग सारंग

हौं बलि जाहुँ नवल पिय-प्यारी ।
नव निकुंज सुख पुंज महल में, दंपति श्री हरिदास दुलारी ॥
अति आसक्त रहसि हँसि-हँसि,
उर लावत मिलि अँग-अँग सुख सारी ।
उज्ज्वल रस बिलसत विवि सुंदर,
'सरसदास' या छवि पर वारी ॥

[७] राग सारंग

विहरत जमुना-जल सुखदाई ।
गौर स्याम अँग अंग मनोहर, चीर चिकुर छवि छाई ॥
कबहुँक रहसि विहँसि धावत हैं, प्रीतम लेत मिलाई ।
छिरकत छैल परस्पर छवि सों, कर अंजुलि छटकाई ।
कबहुँक जल समूह रस झेलत, खेलत दै बुड़काई ।
महा मत्त जुग वर सुखदायक, रहत कंठ लपटाई ॥
क्रीड़त कुँवरि-कुँवर जल थल मिलि, रंग अनंग बढ़ाई ।
हाव-भाव आलिंगन-चुंबन, करत केलि सुखदाई ॥
भींजे बसन निवारि सहचरी, नव तन चित्र बनाई ।
रचे दुकूल फूल अति अँग अँग, 'सरसदास' बलि जाई ॥

८. श्री नरहरिदास

श्री नरहरिदास का जन्म 'निज मत सिद्धांत' के अनुसार बुंदेलखंड के गूढो नामक ग्राम में हुआ था। उनके पिता का नाम विष्णुदास था, जो एक भगवद्भक्त और साधु प्रकृति का ब्राह्मण था। ऐसा कहा जाता है, विष्णुदास ने सनकादिक ऋषियों की तपस्या कर उसके फल स्वरूप श्री जगन्नाथ जी के अवतार रूप में नरहरिदास जैसा सुपुत्र प्राप्त किया था।

उनमें बचपन से ही दैवी गुणों का प्रकाश होने लगा था। उनके द्वारा अनेक चमत्कारिक कार्य किये जाने की किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। वे अपने दैवी गुणों और साधु-सेवा के कारण बुंदेलखंड में दूर-दूर तक प्रसिद्ध हो गये थे। ३५ वर्ष की आयु होने पर वे घर-बार छोड़ कर विरक्तावस्था में वृंदाबन चले गये। वहाँ पर वे हरिदासी संप्रदाय के आचार्य सरसदास के शिष्य हो कर स्थायी रूप से वृंदाबन में ही रहने लगे। अंत में सरसदास जी का देहावसान होने पर वे ही उनके उत्तराधिकारी बनाये गये थे।

'निज मत सिद्धांत' के अनुसार उनका जन्म सं० १६४० की ज्येष्ठ कृ० २ को हुआ था। वे ३५ वर्ष तक घर पर और ६६ वर्ष तक वृंदाबन में रहे थे। इस प्रकार १०१ वर्ष की दीर्घायु होने पर उनका देहावसान सं० १७४१ की पौष शु० ७ को वृंदाबन में हुआ था[१]।

---

१. जन्म सु सोरासै चालीसा। जेठ प्रथम दोयज तिथि दीसा॥
वर्ष एक सौ एक बिराजे। पैंतीसादि गृहे मधि गाजे॥
छयासठि श्री वृंदाबन बासा। कीनों रस बैराग्य प्रकासा॥
संवत सत्रासै इकताली। उर्ग कंचुकी वत देह डाली॥
पूष शुक्ल सातें दिन आयौ। नरहरि तनु तजि श्री बन पायौ॥

—अवसान खंड, पृ० १२०

उनके विषय में श्री सहचरिशरण जी का कथन है—

रसिकन के मुख हम सुनी. नरहरि देव प्रवीन ।
वृंदावन बिच आयकै, सरस-सरन तिन लीन ।।
हरि उपासना भेद मग, परम नरम रस-रीति ।
नरहरि अनुचर होन निस, कहियत हैं करि प्रीति ।।

उनकी वाणी बहुत कम परिमाण में है । केवल कुछ पद और दोहा ही उसके रचे हुए मिलते हैं, किंतु वे सारगर्भित हैं। उनकी भाषा ब्रज की है, जो सुलझी हुई तथा प्रवाहपूर्ण है ।

श्री नरहरिदास की वाणी

[१] राग सारंग

जाकी मनमोहन दृष्टि परे ।
सो तौ भयौ सावन कौ अंधौ, सूझत रंग हरे ।।
जड़ चैतन्य कछू नहीं समुझै, जित देखै तित स्याम खरे ।
बिह्वल बिकल सँभार न तन की, घूमत नैना रूप भरे ।।
करनी अकरनी दोऊ सुधि भूली, बिधि-निषेध सब रहे धरे ।
श्री नरहरिदास जे भये बाबरे, ते प्रेम-प्रबाह परे ।।

[२] राग केदारौ

दोऊ सुरति सेज सुख सोये ।
करत पान मकरंद प्रिया-पिय, अधर पान रस भोये ।।
मन सों मन, तन सों तन मिलवत, मदन मान सब खोये ।
श्री नरहरिदासी सुख निधि बिलसत, नैन कमल मुख जोये ।।

दोहा—नरहरि धागा सूत कौ, गर्व करो जिनि कोइ ।
जद्दपि चंद्र कलंक है, जक्त उजारौ होय ।।१।।

नरहरि रज कौ ठीकरा, पक्यौ मृतक के संग ।
ताहि छोत परसै नहीं, अपरस सदा अभंग ।।२।।

६. श्री रसिकदास

श्री रसिकदास आचार्य नरहरिदास जी के शिष्य थे। वे बड़े गुरु-भक्त और विनम्र स्वभाव के संत थे। उनके गुरु ने अनेक प्रकार से उनकी परीक्षा ली, जिसमें उन्हें कई बार अपमानित होना पड़ा, यहाँ तक कि वृंदाबन भी छोड़ना पड़ा; किंतु उनकी गुरु-निष्ठा में कोई कमी नहीं आई। अंत में वे नरहरिदास जी के पश्चात् उनके उत्तराधिकारी बनाये गये थे।

'निज मत सिद्धांत' के आधार पर 'श्री निंबार्क माधुरी' में उनका जन्म-संवत् १६९२ लिखा गया है। वे सं० १७४१ में नरहरिदास जी के उत्तराधिकारी रूप में हरिदासी संप्रदाय के आचार्य हुए थे। उनका देहावसान सं० १७५८ में हुआ था[1]। 'मिश्रबंधु बिनोद' में भूल से उन्हें राधावल्लभीय लिख दिया है, तथा उनकी रचनाओं के नाम भी ठीक नहीं लिखे गये हैं[2]।

रसिकदास जी के जीवन का एक प्रमुख कार्य वृंदाबन में ठाकुर श्री रसिक बिहारी जी के मंदिर की स्थापना करना था। उनसे पूर्व हरिदासी संप्रदाय के विरक्त वर्ग का कोई मंदिर नहीं था। स्वामी जी द्वारा प्रगटित ठाकुर श्री बिहारी जी के संबंध में विरक्त वर्ग का गोस्वामियों से विवाद था। रसिकदास जी ने डूंगरपुर राज्य से ठाकुर जी की प्रतिमा मँगवा कर उसकी सेवा-पूजा के लिए वृंदाबन में एक मंदिर बनवाया, जो श्री रसिक बिहारी जी के नाम से अब भी विद्यमान है। उक्त मंदिर पर हरिदासी संप्रदाय के विरक्त संतों का अधिकार है।

---

१. श्री निंबार्क माधुरी, पृ० ३१३

२. मिश्रबंधु विनोद, पृ० ५०२–५०३

उनके समय में राधावल्लभीय गोस्वामी रूपलाल जी से हरिदासी संतों का कुछ मनोमालिन्य हुआ था, जिसके फलस्वरूप सांप्रदायिक साहित्य में भी कुछ विवादास्पद उल्लेख किये गये थे। ऐसा मालूम होता है, उस समय सांप्रदायिक तनाब काफी बढ़ गया था और साहित्य की विकृति भी आरंभ हो गई थी।

रसिकदास जी ने कई ग्रंथों की रचना की थी। 'श्री निंबार्क माधुरी' में उनके रचे हुए ११ ग्रंथों के नाम इस प्रकार दिये गये हैं—

१. भक्ति-सिद्धांत-मणि, २. पूजा-विलास, ३. सिद्धांत के पद, ४. रस के पद, ५. रस-सिद्धांत की साखी, ६. कुंज-कौतुक ७. रस-सार, ८. गुरु-मंगल-यश, ९. बाल-लीला, १०. ध्यान-लीला और ११. वाराह संहिता।

अष्टाचार्यों की वाणी में उनके रचे हुए अनेक दोहे और पद संकलित मिलते हैं; जो रस-सिद्धांत की दृष्टि से मार्मिक हैं।

श्री रसिकदास की वाणी

[१] राग केदारौ

सोहत नैन-कमल रतनारे।
रूप भरे मटकत खंजन से, मनों बान अनियारे।
माथे मुकट लटक ग्रीवा की, चित तें टरत न टारे॥
अलिगन जनु झुकि रहे बदन पर, केस तें घूँघर वारे॥
छूटे बंद झीनों तन बागौ, मुकुर रूप तन कारे।
ढरकि रही माला मोतिन की, छकित छैल मतवारे॥
अंग-अंग की सोभा निरखत, हरषत प्रान हमारे।
रसिक बिहारी की छवि निरखत, कोटिक कविजन हारे॥

[२] राग विहागरौ[1]

भाग बड़ौ वृंदाबन पायौ।
जा रज कों सुर-नर-मुनि कलपत, विधि शंकर सिर नायौ॥
बहुतक जुग या रज बिन बीते, जनम-जनम डहकायौ।
सो रज अब किरपा करि दीनी, अभय निसान बजायौ॥
आय मिल्यौ परिवार आपने, हरि हँसि कंठ लगायौ।
स्यामा स्याम जू विहरत दोऊ, सखी समाज मिलायौ॥
सोग संताप करौ मति कोई, दाब भलौ बनि आयौ।
श्री रसिकबिहारी की गति याही, धनि-धनि लोक कहायौ॥

[३] राग विहागरौ[2]

अरी ! यह कौन सलौने रूप ?
हँसि-हँसि बातें कहत सखी ! यह कुँवर कहाँ कौ भूप॥
स्याम अंग पीत पट राजत, माथे मुकट अनूप।
भृकुटी बिकट नैन रस बरषत, बदन सुधानिधि ऊप॥
कुंडल किरन कुटिल अलकावलि, रहीं कपोलनि भूप।
श्री रसिकबिहारी की छवि निरखत, मदन तेज तन तूप॥

दोहा—रसिकनि मुख नहिं बिछुरे, ना दुरि बैठे कहुँ ओर।
ए तौ मान बिहार में, मस्त नैन की कोर॥१॥
रसिक रसीली बात सो, कहत प्रिया मुख मोरि।
करै बीनती साँवरौ, नैननि में कर जोरि॥२॥
सकल उदीपन मदन के, होत राग अरु रंग।
रसिकबिहारी की छबि निरखत, तहाँ मुरली नहिं संग॥३॥
मेरे जिय में पिय बसौ, मैं पिय के मन माँहि।
ऐसी अधिकी कौन है, जो जुगल चित्त पग जाँहि॥४॥

७. श्री ललितकिशोरीदास

श्री ललितकिशोरीदास आचार्य श्री रसिकदास के शिष्यों में से थे। उनका जन्म सं० १७३३ में भदावर राज्य के एक ग्राम में हुआ था। वे माथुर ब्राह्मण थे और उनका आरंभिक नाम गंगाराम था। बाल्यावस्था में ही उनके चित्त में वैराग्य उत्पन्न हो गया था। वे घर-बार छोड़ कर सत्संग करते हुए भ्रमण करने लगे। अंत में वृंदाबन पहुँच कर श्री रसिकदास जी के शिष्य हो गये। उनका नाम ललितकिशोरीदास रखा गया। वे स्वामी हरिदास जी के आदर्श पर केवल कोपीन, कंथा और करुआ का उपयोग करते हुए अत्यंत विरक्त भाव से वृंदाबन में निवास करते थे। रसिकदास जी का देहावसान होने पर वे सं० १७५८ में उनके उत्तराधिकारी बनाये गये थे।

उनके समय में हरिदासी संप्रदाय के विरक्त संतों और गृहस्थ गोस्वामियों में पारस्परिक मनोमालिन्य और विद्वेष पराकाष्ठा पर पहुँच गया था; जिसके कारण लड़ाई-झगड़ा और राजकीय हस्तक्षेप तक की नौवत आ गई थी। इसके फल स्वरूप श्री ललितकिशोरी जी को निधुबन से हट कर यमुना किनारे के एकांत स्थल में जाना पड़ा था। उनके शिष्य, सेवक और भक्त गण भी वहाँ पर ही एकत्र होने लगे। वह स्थान एक दम खुला हुआ और अरक्षित था; इसलिए उसे चारों ओर बाँस की टट्टियों से घेर दिया गया। टट्टियों के उस घेरे में ही वे भक्त गण अपना भजन-ध्यान, सेवा-पूजा और उत्सवादि करने लगे। कालांतर में वह स्थान 'टट्टी संस्थान' के नाम से प्रसिद्ध हुआ और वृंदाबन में हरिदासी संप्रदाय का प्रधान केन्द्र बन गया।

ललितकिशोरी जी की वाणी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध है; जो बिहारिनदास जी के बाद अष्टाचार्यों में सबसे अधिक है। उसकी रचना अधिकतर दोहा छंद में हुई है; किंतु स्थान-स्थान पर सोरठा, चौपई, अरिल्ल आदि छंद तथा पद भी मिलते हैं। उनकी वाणी में हरिदासी संप्रदाय की भक्ति, उपासना और वैराग्य भावना का सीधी-सादी भाषा में कथन हुआ है। उनका देहावसान सं० १८२३ में हुआ था।

ललितकिशोरीदास जी की वाणी

दोहा—**छिन-छिन बीतत जुग समै, तुम बिन नाँहिन और।**
किरपा करहु बिचार कै, परम रसिक सिरमौर ॥१॥
महा अगिनि ज्वाला उठी, फौहा सम हौं आय।
रसिक बिहारिनि ललित बर, तुमहीं लेहु बचाय ॥२॥
जिनकों अपनौ जानते, प्रानन तें अधिकाहि।
तेई अब बैरी भए, श्री हरिदास निबाहि ॥३॥
रसिक रीझि हरिदास जू, राखौ अपने संग।
मिलत-मिलत आनंद अति, छिन-छिन बाढत रंग ॥४॥
रसिक सिरोमनि कृपानिधि, संतनि कहौं सुनाय।
बिषै-दाह में जलत हौ, लीनी तपति बुझाइ ॥५॥
श्री स्वामी हरिदास गुरु, श्री बिपुल बिहारिनदास।
इन बिन देखौं केलि-सुख, तो जानों विष की रास ॥६॥
श्री स्वामी हरिदास चरन गहि, पायौ निजु बिस्राम।
गौर-स्याम निरखत रहूँ, छूटे झूठे काम ॥७॥
श्री स्वामी हरिदास बिन, भूलि चहूँ जो और।
तो मोहि दीजै लाड़िली, नहीं नरक में ठौर ॥८॥
नेति-नेति कहै बेद सब, आगम सहित पुरान।
नित्य केलि हरिदास की, जानै सोई जान ॥९॥

* चौबोला *

पंडित ! बाद बहुत तू करै। औरै खंडित नैक न डरै ॥
सील सुभाव नाँहिं जिय धरै। बादहि जन्म नर्क में परै ॥१॥
सब पढ़िवे कौ तत्व बिचार। हरि कौ भजन परम सुख-सार ॥
निश्चय करि यह जिय निरधार। नाना संसै भरम निबार ॥२॥

* चौपई *

साधु-संत कौ संग न तजियै। इन सों मिल कै हरि कों भजियै ॥
दया-दीनता मन में धरियै। संसै-सागर पार उतरियै ॥
हरि के दास सबनि सुखदाई। श्री मुख आपुन करत बड़ाई ॥
भक्तनि पीछै लागै डोलें। बार-बार हरि यों कहि बोलें ॥
भक्त चरन जो रज उर परै। तो भवसागर जीव सब तरै ॥
भक्तन महिमा को कहि सकें। सेस-महेस गनेस सब जकें ॥
चारि मुक्ति की चाह न करें। हरि कौ सेवन सोइ चित धरें ॥
स्वर्ग नर्क की आस न करई। काल-जनम सों नैक न डरई ॥
राति दिवस हरि के गुन गावें। पाँचों इंद्री हरि-रूप समावें ॥
काम-क्रोध जहँ लोभ न पइयै। त्रिगुन परे हरि कों दुलरइयै ॥
माया काल भय नहिं ब्यापै। हरि गुरु मंत्र जपत निजु जापै ॥
साधन सिद्ध भयौ मन प्रेम। छूटि गयौ सब देही नेम ॥
श्रुति स्मृति सकल पुराना। संत समागम इही प्रमाना ॥
अनभै करि हरि कों पहिचाना। नाना संसै भरम भुलाना ॥
एक बेर स्वामी गुन गाय। आवागमन भरम नसि जाय ॥
गौर स्याम के सुखै समाइ। श्री ललितकिशोरी यों समुझाइ ॥

८. श्री ललितमोहिनीदास

श्री ललितमोहिनीदास प्रसिद्ध भक्त हरिराम जी व्यास के वंशज कहे जाते हैं। उनका जन्म ओड़छा में सं० १७८० में हुआ था। जब वे विरक्त होकर वृंदाबन में आये, तब श्री ललित-किशोरी जी के शिष्य हुए थे। वे बड़े ही गुरु-भक्त तथा सेवा परायण संत थे। साथ ही परम भक्त और अनन्य रसिक भी थे।

श्री ललितकिशोरीदास जी के अनंतर उन्हें सं० १८२३ में उनका उत्तराधिकारी बनाया गया था। उनके गुरु के समय में जो 'टट्टी संस्थान' बना था, उसकी समुचित व्यवस्था और उन्नति का श्रेय उनको ही है। इसीलिए इसे 'मोहिनीदास की टट्टी' भी कहते हैं। उन्होंने श्री राधिकाबिहारी जी के स्वरूप की प्रतिष्ठा कर उनकी सेवा-पूजा का भी समुचित प्रबंध किया था।

वे हरिदासी संप्रदाय की विरक्त परंपरा के अंतर्गत 'टट्टी संस्थान' के प्रथम महंत थे। उन्होंने परंपरागत तिलक में कुछ परिवर्तन कर उसे अर्ध नासिका से बढ़ा कर संपूर्ण नासिका तक कर दिया था। इसके अतिरिक्त अपनी संप्रदाय के चिह्न स्वरूप कुछ अन्य विशिष्टताएँ भी निश्चित कीं; जिनके कारण इसका पृथक् महत्त्व स्थापित हो गया।

उनके समय में 'टट्टी संस्थान' की विशेष उन्नति हुई, और उसकी ख्याति भी बहुत बढ़ गई। बड़े-बड़े राजा और सेठ-साहूकार उनके दर्शन तथा सत्संग के लिए लालायित रहते थे। कहते हैं, पंजाब केसरी रणजीत सिंह और मराठा वीर महादजी सिंधिया भी उनके भक्तों में थे। उनका देहावसान सं० १८५८ में हुआ था। वे अष्टाचार्यों में अंतिम माने जाते हैं।

उनकी वाणी अष्टाचार्यों की वाणी के साथ संकलित है। उनके शिष्यों में श्री भगवतरसिक प्रसिद्ध वाणीकार हुए हैं।

ललितमोहिनीदास जी की वाणी

[१] राग बिलावल[1]

बिहारी ! तेरे नैंना रूप भरे।
निरखि-निरखि प्यारी राधे कों, अनत न कहूँ टरे ॥
सुख कौ सार समूह किसोरी, उमँगि-उमँगि अंकौ भरे।
श्री ललितमोहिनी की निज जीवनि, उर सों उरज अरे ॥

[२] राग बिलावल[2]

हौंहूँ आई देखन स्याम।
सुंदर नैन बिसाल साँवरौ, सब विधि पूरन काम ॥
हा-हा करत कितौ अनुरागी, प्रानप्रिया सुखधाम।
श्री ललितमोहिनी कौ सुख पूरन, बिहरैं आठौं जाम ॥

[३] राग बसंत

प्रिया-लाल खेलत बसंत।
झाँझ, मुरज, ढफ, बाँसुरी अरु बीना, मुहचंग लसंत ॥
बजत नँचत नव-नव गति अद्‌भुत, दोऊ मिल हुलसंत।
ललितमोहिनी कौ सुख बाढ्यौ, पूरन रस बिलसंत ॥

[४] राग धनाश्री

होरी आई रंग भरी, खेलत तन सुकुमार।
बादर लाल गुलालन छाए, बरसत धार फुहार ॥
उमँगि-उमँगि बरषत रँग भारी, छूटत कर पिचकार।
ललितमोहिनी के सुख बिहरैं, ए उनके वे उनके हार ॥

चतुर्थ परिच्छेद
हरिदासी भक्त-कवि और उनकी वाणी

हरिदासी संप्रदाय के अष्टाचार्यों की भाँति उनके शिष्य-प्रशिष्यों का वाणी साहित्य भी महत्त्वपूर्ण है। उनमें से कुछ प्रमुख भक्त-कवियों का संक्षिप्त परिचय और उनकी कतिपय रचनाओं का संकलन यहाँ दिया जाता है। इससे ज्ञात होगा कि हरिदासी संप्रदाय के विख्यात वाणीकारों और कृतविद्य कवियों ने ब्रजभाषा भक्ति-साहित्य की समृद्धि में कितना महत्त्वपूर्ण योग दिया है।

१. श्री किशोरीदास

श्री किशोरीदास भक्तवर श्री हरिराम जी व्यास के छोटे पुत्र थे। ऐसा कहा जाता है, व्यास जी ने स्वयं उन्हें स्वामी हरिदास जी का शिष्य बनवाया था। राजा नागरीदास कृत 'पद प्रसंग माला' में उनके प्रसंग में बतलाया गया है कि किशोरीदास जी उत्तम पदों की रचना करते थे[1]। उनका रचा हुआ रास का एक पद भी उसमें दिया गया है—

देखति सबनि कौ मन हरें, ए दोउ नृत्तति रास में रसिक-प्यारी।
नख-सिख कुँवरि सिंगारी, छबि उपजत भारी,
तत्तथेई बोलत लालन बिहारी ॥
मृदंग बजावत ललिता री, सुधंग देसी न्यारी, एक बजावत तारी।
मिलवत गति न्यारी, तिनमें राधिका प्यारी, लेत उरप तिरपारी,
लालन रीझिकें वारत कंठ की मुकता-माला री ॥

---

१. नागर समुच्चय, पृ० २३०

सुखद वृंदाबन सघन फूले पुहपारी, त्रिविध पवन सुखकारी।
जमुना पुलिन निसा री, तैसिय सुभग राका री॥
प्राची दिसि भयौ उड़ि-राजा री,
कहत न बनैं सुच्छ सरद की उजियारी।
किंकिनी नूपुर बाजा री, धुनि सुनि देह बिसारी॥
दोऊ रास में मगन रहत, सदा व्यौहारी।
चारु चरन रज 'किसोरीदास' सिर धारी,
वृषभान की दुलारी, तिन पर करै तन-मन बलिहारी॥

२. श्री कृष्णदास

कृष्णदास नाम के अनेक भक्त-कवि हुए हैं। हरिदासी कृष्णदास श्री नागरीदास जी के शिष्य थे। उनकी एक रचना 'गुरु मंगल' प्राप्त है। इसके दो छंद उदाहरणार्थ उपस्थित हैं—

जै-जै श्री वृंदाबन, सहज सुहावनौ।
नित्य बिहार अधार, सदा मन भावनौ॥
परम सुभग श्री जमुना पुलिन मंजुल जहाँ।
बिमल कमल कुल हंस, सकल कूजित तहाँ॥
बिमल कमल कुल हंस कूजित, सेवत खग-मृग सुख भरे।
मुदित बन नव मोर निर्तत, राजत अति रुचि सों खरे॥
कुसमित कुंज रसाल, लता अति सोहहीं।
अलि-कुल कोकिल कीर, कूजित मन मोहहीं॥
त्रिविध समीर बहत, रस सुखद मनहिं लियैं।
बसंत सरद रितु सेवत, चित बित मनहिं दियैं॥
बसंत सरद सेवत सदा, रितु सुख समुद्रहिं को गनैं।
बिबिध भाँतिनि भूमि राजत, सोभा देखत ही बनैं॥

---

३. श्री नवलसखी

नवलदास उपनाम नवलसखी श्री नागरीदास के भतीजे और शिष्य थे। नागरीदास जी और सरसदास जी की तरह वे भी घर-बार छोड़ कर विरक्तावस्था में वृंदाबन आ गये थे। वे अनन्य भाव से प्रिया-प्रियतम की उपासना करते हुए उनके केलि-रस में सदैव मग्न रहा करते थे। उनके निवास और भजन की रमणीक स्थली बरसाने की मोरकुटी है। 'निज मत सिद्धांत' में उनकी जन्म-तिथि सं० १६१६ की अगहन शु० ५ लिखी गई है[1]।

नवलसखी जी की वाणी

मन में बिचारिकै बिबेक-टेक एक आछी,
ध्रुव हू तें अटल, न टारी टरै आसना।
नाना मत रत जीव उपजि-बिनसि जाँय,
कर्मठ-ज्ञानिन कों काल हू की त्रासना॥
आसू कौ रसिक, रस-रीति हू में रस पीवै,
जगत-अनन्यनि की पूरी भई बासना।
'नवल' बिहारी जू कौ प्रगट बिहार गायौ,
साँचे श्री हरिदास, जिनकी सुदृढ़ उपासना॥१॥

कूर कृपन और दुखित जानि कै, सहज दियौ वृंदाबन बास।
भावत सुद्ध सुभाव अनन्य अति, विभिचारी इंद्री दै घास॥
लीने गहि निरबाहि प्रिया-बल, जिनके मन में यों विस्वास।
काम सहायक देत कामना, परम कृपाल नागरीदास॥२॥

---

१. नवलसखी कौ जन्म बखानों। सोरहसै सोरह उनमानों॥
अगहन शुक्ल पंचमी सारा। ताही दिन उत्सव निरधारा॥
—अवसान खंड, पृ० ६५

४. श्री रूपसखी

रूपसखी हरिदासी संप्रदाय के एक रसिक भक्त थे, जो सखी भाव के उपासक थे। उनका मूल नाम और जीवन-वृत्त अज्ञात है। केवल इतना पता है कि वे आचार्य रसिकदास के शिष्य थे। उनकी वाणी 'सिद्धांत के पद' नाम से 'सिद्धांत रत्नाकर' ग्रंथ में प्रकाशित हुई है। इसके अतिरिक्त उनके रचे हुए ८०० रस के पद तथा १०० कवित्त-सवैया भी प्राप्त हैं, जिनका लिपिकाल सं० १८०९ बतलाया गया है[1]।

रूपसखी जी की वाणी

[१] राग विभास[1]

रसिकन के धन स्यामा स्याम।
अनमिष निरखि धरैं उर संपुट, अद्भुत रतन महा अभिराम॥
वृंदाबन राजैं, छवि साजैं, लाजैं देखत कोटिक काम।
श्री गुरु संत दया करि दीनों, रूपसखी पायौ विश्राम॥

[२] राग विभास[2]

नित्य बिहार सों करि प्रीति।
संग रसिक अनन्य अनुसरि, भाव भक्ति प्रतीत॥
ध्यान चित चिंता रहो, नित मानि रसिक की रीति।
लाल रूप विलोकि दंपति, लखि जगत विपरीति॥

[३] राग विभास[3]

संतन के बस श्री गोविंद।
परम कृपाल ललित नव नागरि, सुंदर स्याम सु ओटत फंद॥
करुनासिंधु दयाल दीन कों, कँवर मनोहर आनँद-कंद।
राधा-संग निकुंज महल में, करत केलि वृंदाबन चंद॥

---

१. सिद्धांत रत्नाकर, भूमिका, पृ० ४०

५. श्री पीतांबरदास

श्री पीतांबरदास आचार्य श्री रसिकदास जी के शिष्य और ललितकिशोरी जी के छोटे गुरु-भाई थे। उनका जन्म १७३४ में हुआ था। उनके पिता चौबेलाल नारनौल के पास सांभापुर ग्राम के निवासी थे। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे और शैव धर्मावलंवी थे; किंतु उनकी पत्नी कृष्णोपासिका थी। माता के संसर्ग के प्रभाव से पीतांबरदास जी को बचपन से ही कृष्ण-भक्ति की ओर रुचि हो गई थी।

एक बार वे अपने पिता के साथ दिल्ली गये थे। वहाँ पर उनका संपर्क रसिकदास जी के एक वैश्य जातीय शिष्य से हुआ; जिससे वे रसिकदास जी का सत्संग प्राप्त करने के लिए व्याकुल हो गये। वे अपने घर से भाग कर वृंदाबन पहुँचे और वहाँ रसिकदास जी के शिष्य हो गये। उनका पिता उन्हें घर पर वापिस ले गया; किंतु वे वहाँ पर नहीं रुके और पुनः निकल भागे।

वे अनेक स्थानों में भ्रमण करते हुए साधु-संतों के सत्संग द्वारा अपनी उपासना-भक्ति को सुदृढ़ करते रहे। उन्होंने अनेक सिद्धियाँ प्राप्त कीं और लोगों को बड़े-बड़े चमत्कार दिखाये। वे अजमेर में ख्वाजा साहब की कब्र पर जा कर बैठ गये और मुल्लाओं को अपनी सिद्धि से चकित कर दिया। अंत में पुष्कर, जयपुर आदि स्थानों में घूमते-फिरते वृंदाबन में अपने गुरु श्री रसिकदास जी के पास पहुँच गये। वहाँ पर उन्होंने सिद्धियों और चमत्कारों को छोड़ कर श्यामा-श्याम की शुद्ध भक्ति और उपासना में मन लगाया और वे उनके दिव्य शृंगार का रसास्वादन करने लगे।

रसिकदास जी का देहावसान होने पर उनके प्रमुख शिष्यों द्वारा स्वामी जी की विरक्त परंपरा की तीन शाखाएँ हो गई थीं। उनके शिष्य ललितकिशोरी जी हरिदासी संप्रदाय की उस गद्दी के आचार्य हुए, जो 'टट्टी संस्थान' के नाम से प्रसिद्ध है। दूसरे शिष्य गोविंददास जी से ठाकुर श्री गोरेलाल जी वाली शाखा चली। पीतांबरदास जी ठाकुर श्री रसिक बिहारी जी के प्रधान बनाये गये थे। उनसे तीसरी शाखा चली।

पीतांबरदास जी के शिष्यों में 'निज मत सिद्धांत'-कार किशोरदास जी का नाम उल्लेखनीय है। पीतांबरदास जी ने पर्याप्त परिमाण में रचनाएँ की हैं, जो भावपूर्ण तथा सरस हैं। उनकी मुख्य रचनाएँ—१. समय प्रबंध, २. सिद्धांत के पद, ३. सिद्धांत की साखी और ४. शृंगार रस के पद हैं। इनके अतिरिक्त आचार्यों की बधाई के पद तथा केलिमाल की पद्यबद्ध टीका भी उनकी कृतियाँ हैं।

पीतांबरदास जी की वाणी

दोहा

झूलत पिय के नैन में, फूलत प्रिया कदंब।
प्यारी कर सों कर गहै, पिय कर पल्लव अंब ॥१॥

नैन नैन सूं मिलि रहे, प्रान प्रान पद पाय।
झूलत हिय हिंडोरना, फूलत अंग न माय ॥२॥

हरिदासी के हीय में, पीव झुलावत तीय।
आप न झूलत सहचरी, देखहु अचरज हीय ॥३॥

चौपाई

प्रीतम के प्रिय प्रान हिडोरें। अंग सुगंध गंध झकझोरें ॥
करत नेन सूं नैन निहोरें। मन्मथ पिय के मान मरोरें ॥४॥

अविचल पावस रितु मन भाई। प्रिया पीव कों अति सुखदाई।
प्यारी दामिनि घन घनस्याम। रस बरषा बरषै सुखधाम ॥५॥
सहचरि हिय प्रीतम कौ बाग। सींचत रस जल अति अनुराग।
अमृत झरनि झर बरस सदीव। घोर चमक इकरस दो पीव॥६॥
हरित भई बागन की वेलि। नैन सैंन रस धारैं फैलि।
सहचरि हीय सरोवर भरचौ। सो प्रीतम कौ मन तहाँ हरचौ ॥७॥
लता लिपट गई स्याम तमालैं। बात पात बन सघन रसालैं।
सो सावन भावन बनि आई। पिय मन हरनि तरनि झरि लाई॥८॥
कोक मोर पिकवत सब बोलें। घन गरजैं दामिनि दुति लोलें।
उमँगी छबि कारी अँधियारी। कौंधि प्रकास प्रान की प्यारी ॥९॥
घन दामिनि दोऊ रस रसकें। प्रेम सहेलि हिंडोरे गसकें।
चाह चाहि चाहन में चसकें। नाहु बाहु बाहुन में बसिकें ॥१०॥
कृशावंत स्वामिनि रस झूलें। प्रीतम कों लै उर भुज मूलें।
श्री हरिदासी ढाँप दुकूलें। मन रंजन नैनन में फूलें ॥११॥

आनंद कंद हिंडोरने, झूलत दिन अरु रैन।
दो रस रूप झकोरने, फूलत कहि मृदु बैन ॥१२॥

[१३] राग जै-जैवंती

आज झूलत दोऊ नवल हिंडोरना।
स्याम सघन घन दामिनि सों किए प्रन,
जब तुम कौंधौ प्यारी, तब हम घोरना ॥
झुलावें श्री हरिदासि दुलारी, झूलें दोऊ कुंजबिहारी,
सरस सुखन कों एरी ! ओर न छोरना।
श्री रसिक बिहारी जू थाके, प्यारी जू के मद छाके,
पीतांबर उढाय लै री ! कहत निहोरना ॥

६. श्री किशोरदास

किशोरदास जी श्री पीतांबरदास जी के शिष्य थे। उनका जन्म जयपुर राज्य के आमेर नगर में हुआ था। उनके पिता का नाम घासीराम और माता का नाम खेमादेवी था। वे सारस्वत ब्राह्मण थे। उनके जन्म और देहावसान के यथार्थ तिथि-संवत् उपलब्ध नहीं हैं। उन्होंने अपनी प्रसिद्ध रचना 'निज मत सिद्धांत' में अपना दीक्षा-प्राप्ति काल सं० १७९१ लिखा है[१]। उनके कथन से ज्ञात होता है कि वे किशोरावस्था में ही दीक्षित हो गये थे। इससे उनका जन्म-काल सं० १७७० के लगभग अनुमानित किया जा सकता है।

उन्होंने देश के अनेक स्थानों में भ्रमण किया था। इससे उनका ज्ञान बहुत विस्तृत था। यद्यपि उन्होंने श्री पीतांबरदास जी से हरिदासी मत की दीक्षा ली थी; तथापि वे निंबार्क संप्रदाय के प्रचार के प्रबल आग्रही थे। उन्होंने 'निज मत सिद्धांत' में स्वामी हरिदास जी और उनकी परंपरा के आचार्यों को निंबार्क संप्रदाय के अंतर्गत सिद्ध किया है।

उनका रचा हुआ 'निज मत सिद्धांत' हरिदासी परंपरा का विशाल संदर्भ ग्रंथ है। इसमें श्री निंबार्काचार्य और उनकी शिष्य-परंपरा से लेकर स्वामी हरिदास जी और उनकी परंपरा के अष्टाचार्यों का विस्तृत वर्णन तिथि-संवत् सहित किया गया है। इसमें लिखे हुए तिथि-संवत् प्राय: आनुमानिक जान पड़ते हैं; तथापि उनका निश्चय करने और विविध जीवन-वृत्तों की सामग्री जुटाने में उन्होंने निस्संदेह बड़ा परिश्रम किया है।

---

१. सत्रादस इक्यानवे, संवत्सर सुख दीन ।
बैसाखी तृतीया सुकल, मोहि शिष्य कर लीन ॥

निंबार्क संप्रदाय के उत्कट आग्रह और तिथि-संवत् की कहीं-कहीं गड़बड़ी होने के कारण उनके ग्रंथ की कटु आलोचना भी हुई है; किंतु हरिदासी मत से संबंधित बहुमूल्य सामग्री के कारण इसका महत्व निर्विवाद है। इसके रचना-काल का उल्लेख नहीं मिलता है; किंतु इसे सं० १८२० के लगभग रचा हुआ अनुमानित किया गया है[1]।

किशोरदास जी के महत्त्व को चिर स्थायी करने के लिए 'निज मत सिद्धांत' ही पर्याप्त है; किंतु उनका रचा हुआ वाणी साहित्य भी प्रचुर परिमाण में उपलब्ध होता है। 'सिद्धांत-रत्नाकर'[2] ग्रंथ में प्रकाशित सिद्धांत सरोवर, सिद्धांत सार संग्रह, उपदेश आनंद सत, सवैया पच्चीसी, सिद्धांत के कवित्त आदि रचनाओं से उनकी विद्वता, भक्ति-भावना और काव्य-प्रतिभा का प्रमाण मिलता है। श्री किशोरदास हरिदासी मत की विरक्त परंपरा में निश्चय ही एक महत्वपूर्ण भक्त-कवि हुए हैं।

उनकी प्रसिद्ध रचना 'निज मत सिद्धांत' का एक मनोहर अंश यहाँ दिया जाता है—

लख दंपति हित प्रेम सहेली। प्रफुलित बिपिन भूमि द्रुम बेली ॥
सकल विटप कुसुमन छबि छाए। फूल महल बन दरस दिखाए ॥
बिच-बिच किसलय दल हरियाई। अष्टकोन षटकोन निभाई ॥
स्याम-रक्त-सित-पीत प्रसूना। सौरभ लेत भ्रमर के छौना ॥
अवनि उदित अद्भुत सुख गोभा। नगमनि सकल सुमन की सोभा ॥
सहचरि दृग फूले रग भीने। दरपन वत दंपति सुख दीने ॥

---

१. भक्त-कवि व्यास जी (अग्रवाल प्रेस, मथुरा), पृ० ३३

२. यह ग्रंथ बाबा विश्वेश्वरशरण जी द्वारा संपादित होकर श्री निंबार्क शोध मंडल, वृंदाबन से सं० २०१३ में प्रकाशित हुआ है।

प्रफुलित खग बोलत कल बानी। नित्य किसोर चरित रस सानी॥
कुसुम परस सौरभ मिलि पवना। सीतल मंद सुगंधित गवना॥

दंपति लखि बृंदा विपिन, कुसुन दल छबि छाय।
परम प्रेम माधुर्य रस, उठी सहचरी गाय॥

लख सुनि बिपिन सहचरी गाना। रति सुख सूचत रति पति बाना॥
प्रफुलित रूप छटा छबि छाई। प्रेम सहेली तिय मिलि आई॥
चरण नाभि कर कमल सुफूले। उरज कपोल नैन अनुकूले॥
परसि पराग भ्रमर : भूले। कोक निपुन युग गुन गन फूले॥
कुसुम शृंगार परसपर सोहैं। प्रेम सहेलिन के मन मोहैं॥
फूल बसन आभूषन धारी। तनु मन फूलि रहे पिय प्यारी॥
कुसुम तल्पकल विमल बिताना। चित्र विचित्र रचे बिधि नाना॥
कुसुम दलन के अपल उसीसा। करत केलि फूले बनधीसा॥

—अवसान खंड, पृ० ३६

किशोरदास जी की वाणी

धर्म सहित धन धारियै, ज्यौं अम्रत जल कूप।
किसोरदास निकसत रहत, त्यौं त्यौं पर्म अनूप॥१॥

किसोर दास धन धर्म विन, उपजावत मन त्रास।
मरे होत ता परि अचल, सर्प सु प्रेत पिसाच॥२॥

अर्थ होत धन तैं प्रबल, जो सेवत सुख संत।
किसोरदास पल संग तैं, वनत अनर्थ अनंत॥३॥

धन तैं बनत अनर्थ अति, धन ही अर्थ निवास।
किसोरदास ता संग तैं, तैसौ करत प्रकास॥४॥

७. श्री भगवतरसिक

श्री भगवतरसिक हरिदासी संप्रदाय के प्रसिद्ध भक्त और विख्यात वाणीकार हुए हैं। वे श्री ललितमोहिनीदास जी के शिष्य थे। उनके जन्म-संवत्, जन्म-स्थान, माता-पिता के नाम तथा जीवन-वृत्त का कहीं उल्लेख नही मिलता है। श्री किशोरदास के पश्चात् श्री सहचरिशरण ने 'ललित प्रकाश' में हरिदासी संप्रदाय के अनेक महात्माओं और वाणीकारों का विस्तार पूर्वक कथन किया है; किंतु उन्होंने भगवतरसिक जी का वैसा उल्लेख नहीं किया। उनका जन्म-संवत् १७९५ के लगभग अनुमानित किया गया है[1]।

उनकी वाणी में हरिदासी संप्रदाय की उपासना और उसके भक्ति-सिद्धांत का स्पष्टीकरण मिलता है। उनका रचा हुआ 'अनन्य निश्चयात्मक ग्रंथ' लखनऊ निवासी ला० केदारनाथ जी की अर्थ सहायता से टट्टी संस्थान द्वारा सं. १९७१ में प्रकाशित किया गया था। श्री वियोगी हरि ने उनके संबंध में कहा है—

श्री स्वामी हरिदास, रसिक-नृप कौ जो मारग।
ताहि धारि नित कुंज-केलि करि, भौ भव पारग ॥
जग वैभव मुख मोरि, कियौ करुवा सों नातौ।
स्यामा-स्याम लड़ाय, फिरै ब्रज-बीथिन मातौ ॥
बिरचे अनन्य निश्चय रहस, अष्टयाम पद सामयिक।
श्री ललितमोहिनीदास के, कृपा-पात्र भगवतरसिक ॥

वे परम विरक्त, सर्वस्व त्यागी और भजनानंदी महात्मा थे। युगल स्वरूप की केलि-क्रीड़ा का रसास्वादन ही उनके जीवन

१. ब्रज माधुरी सार, पृ० २१९, निंबार्क माधुरी, पृ० ३५३

का लक्ष था, जिसकी पूर्ति में वे दिन-रात सोल्लास सचेष्ट रहते थे। वे सभी प्रकार के प्रपंचों से दूर रहकर सदैव भगवच्चिंतन करना ही अपना परम धर्म मानते थे। इसी लिए उन्होंने ललित-मोहिनीदास जी के पश्चात् 'टट्टी संस्थान' का आचार्यत्व भी स्वीकर नहीं किया था।

भगवतरसिक जी की वाणी

भगवतरसिक जी ने अपनी वाणी में हरिदासी संप्रदाय का स्वरूप इस प्रकार बतलाया है—

आचारज ललिता सखी, रसिक हमारी छाप।
नित्य किसोर उपासना, जुगल मंत्र कौ जाप॥
जुगल मंत्र कौ जाप, वेद रसिकन की बानी।
श्री वृंदाबन धाम, इष्ट स्यामा महारानी॥
प्रेम देवता मिले बिना, सिधि होय न कारज।
'भगवत' सब सुखदानि, प्रगट भए रसिकाचारज॥१॥

नाहीं द्वैताद्वैत हम, नहीं विशिष्टाद्वैत।
बँध्यौ नहीं मतवाद में, ईश्वर इच्छाद्वैत॥२॥

उनकी वाणी में हरिदासी संप्रदाय की भक्ति-भावना और भक्तों के कर्त्तव्य का इस प्रकार कथन किया गया है—

प्रथम सुनै भागौत, भक्त-मुख भगवत बानी।
द्वितिय अराधै भक्ति, व्यास नव भाँति बखानी॥
तृतिय करै गुरु समझि, दक्ष सर्वज्ञ रसीलौ।
चौथै होय विरक्त, बसै बनराज जसीलौ॥
पाँचै भूलै देह निज, छठें भावना रास की।
सातें पावै रीति-रस, श्री स्वामी हरिदास की॥३॥

कुंजन तें उठि प्रात, गात जमुना में धोवै ।
निधिबन करि दंडौत, बिहारी कौ मुख जोवै ।।
करै भावना बैठि, स्वच्छ थल रहित उपाधा ।
घर-घर लेइ प्रसाद, लगै जब भोजन स्वादा ।।
संग करै भगवत रसिक, कर करुवा, गूदरि गरै ।
वृंदाबन बिहरत फिरै, जुगल रूप नैनन धरै ।।४।।

सोरठा—जीव ईस मिलि दोय, नाम-रूप-गुन परिहरै ।
रसिक कहावै सोय, ज्यों जल घोरै सर्करा ।।५।।
दिया कहैं सब कोय, तेल-तूल पाबक मिलै ।
तमहिं नसावै सोय, वस्तु मिलैं भगवत रसिक ।।६।।

इतने गुन जामें सो संत ।
श्री भागवत मध्य जस गावत, श्रीमुख कमला-कंत ।।
हरि कौ भजन, साधु की सेवा, सर्वभूत पर दाया ।
हिंसा–लोभ–दंभ–छल त्यागै, विष सम देखै माया ।।
सहनसील आसय उदार अति, धीरज सहित बिवेकी ।
सत्य वचन सबकों सुखदायक, गहि अनन्य ब्रत एकी ।।
इंद्रीजित, अभिमान न जाके, करे जगत कों पावन ।
'भगवतरसिक' तासु की संगति, तीनहुँ ताप नसावन ।।७।।

साँचौ श्री राधारमन, झूठौ सब संसार ।
बाजीगर कौ पेखनौ, मिटत न लागै बार ।।
मिटत न लागै बार, भूत की संपति जैसै ।
मिहरी–नाती–पूत, धुवा कौ धौरर तैसै ।।
भगवत ते नर अधम, लोभ बस घर-घर नाँचै ।
झूठे गढ़े सुनार, मैन के बोलै साँचै ।।८।।

कपटी ज्ञानी कंस से, बगुला कैसौ ध्यान ।
वेष बनायौ पूतना, जिमि असि मखमल म्यान ।।
जिमि असि मखमल म्यान, दसन कुंजर के ऐसे।
स्वारथ साधक और, दिखावत औरहि जैसे ।।
ऐसेन कौ सँग तजौ, भक्त 'भगवत' जिहि कपटी।
लोभी करै अनर्थ, अर्थ जानै नहि कपटी ।।६।।

नित्य बिहारी की कला, प्रथम पुरुष अवतार।
तासु अंस माया भई, जाकौ सकल पसार ।।
जाकौ सकल पसार, महातत्व उपज्यौ जातें।
अहंकार उत्पत्ति भई, श्रुति कहै जु तातें ।।
अहंकार त्रैरूप भयौ, शिव-विधि-असुरारी।
'भगवत' सब कौ तत्व, बीज श्री नित्यबिहारी ।।१०।।

नर्क-स्वर्ग-अपवर्ग आस नहि त्रास है।
जहँ राखौ तँह रहौं मानि सुख-रास है ।।
देहु दया करि दान, न भूलों केलि कों।
'भगवत' चलित तमाल बिलोकों बेलि कों ।।
दुख-सुख भुगतै देह, नहीं कछु संक है।
निंदा-स्तुति करौ राव क्या रंक है ।।
परमारथ व्यवहार बनौ, कै ना बनौ।
अंजन ह्वै मम नैन 'रसिक भगवत' सनौ।।११।।

[१२] राग काफी

जाबक जुत जुग चरन लली के।
अद्भुत अमल अनूप दिवाकर, मोहन-मानस कंज कली के ।।
मंजुल मृदुल मनोहर सुख-निधि, सुभग सिंगार निकुंज गली के।
सुरतरु कामधेनु चिंतामनि, 'भगवतरसिक' अनन्य अली के ।।

८. श्री सीतलदास

श्री सीतलदास टट्टी संस्थान के महंत ठाकुरदास जी के शिष्य थे। उन्होंने अपने जन्म-संवत्, जन्म-स्थान, माता-पिता, कुटुंब-परिवार आदि के विषय में न तो स्वयं कुछ लिखा है और न किसी दूसरे ने ही उनका उल्लेख किया है। उनके गुरु का आचार्यत्व-काल सं० १८५९ से १८६८ तक है। इसलिए सीतलदास जी का समय भी १९ वीं शती का उत्तरार्ध होता है।

वे हरिदासी संप्रदाय के महात्माओं में अपने ढंग के निराले भक्त-कवि थे। वे ब्रजभाषा के साथ संस्कृत और फारसी के भी अच्छे विद्वान थे। उनकी गुलजार चमन, आनंद चमन और बिहार चमन नामक रचनाओं से उनका अद्भुत निरालापन प्रकट होता है। इन ग्रंथों की भाषा प्रायः खड़ी बोली है, जिसमें ब्रजभाषा और संस्कृत के साथ फारसी शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग हुआ है। कहीं-कहीं पर तो उनकी रचना उर्दू शायरी जैसी मालूम होती है। इसलिए कुछ लोग इसे लौकिक प्रेम के अर्थ में भी घसीटते हैं!

उनकी रचनाओं में 'लालबिहारी' का नाम प्रायः आता है, जिसके प्रति उनकी उत्कट आसक्ति की भावना व्यक्त हुई है। कुछ लोगों की कल्पना है कि 'लालबिहारी' कोई सुंदर बालक था, जिस पर वे आसक्त थे! इस प्रकार का कथन सर्वथा भ्रमपूर्ण और मिथ्या है। वास्तव में यह नाम हरिदासी संप्रदाय के उपास्य ठाकुर श्री बिहारी जी का है और सीतल जी की रचनाओं में उनके प्रति अलौकिक प्रेम की व्यंजना हुई है।

उनके द्वारा रचित गुलजार चमन, आनंद चमन और बिहार चमन को टट्टी संस्थान ने मथुरा के श्री शुकदेव प्रसाद शर्मा से प्रकाशित करा कर अमूल्य वितरित कराया था।

श्री मिश्रबंधुओं ने उनके काव्य की बड़ी प्रशंसा की है। उनका मत है—"सीतल के चमन वास्तव में भाषा-साहित्य के अपूर्व रत्न हैं।...इनकी पूरी रचना में एक छंद भी शिथिल या नीरस नहीं है और वह बड़ी ही जोरदार एवं चित्ताकर्षिणी है। इनके सब छंद खड़ी बोली में हैं। खड़ी बोली के कवियों में सीतल का नंबर प्रथम जान पड़ता है।...इनकी रचना में स्वच्छंद उमंग, उपमा, रूपक और अनूठेपन की खूब बहार है और खयालात की बलंद परवाज़ी तथा बारीकियाँ अच्छी हैं[1]।"

यहाँ पर उनकी तीनों रचनाओं के कतिपय उदाहरण दिये जाते हैं—

पंकज पर बीरबधू बैठी, उपमा लखि होजा कुंद कहीं।
कै शरद कमल पर दल विद्रुम, देख छुटै दुख द्वंद कहीं॥
पंकज दल ऊपर चुन्नी सी, बरणै मति रहु मुख मुंद कहीं।
कुंदन पर माणिक जड़े हुए, जानो मँहदी के बुंद कहीं॥१॥

नख शरद चंद्र मिहँदी कोरें, कुंदन के बाग सुहाये से।
अघ हरण तिमिरि के नाश करन, मेरे उर बीच समाये से॥
नौरतन जड़ी जंजीर झलक, एडी गुलाब दल छाये से।
मखमल जरदोजी काम कोश, छवि चरण चूमने आये से॥२॥

माणिक के चौके जड़े हुए, विद्रुम रँग जरद जसी से हैं।
छवि छद गुलाब के मात पड़े, उर कंटक दरद कशी से हैं॥
तारागण मोती अस्त बेध, जग राखें ललित असी से हैं।
नख लालबिहारी के शीतल, क्या पूरण शरद शशी हैं॥३॥

—गुलज़ार चमन

---

१. मिश्रबंधु विनोद, द्वितीय भाग, पृ० ६३३-३४

सब छाँड़ चरण की शरण, सदा तेरे ही दर पर अड़े हुए।
टलते हैं भला कभी जालिम, जे सर्व चमन में गड़े हुए॥
गुल लाला गुंचे फूल गये, कर चाक गरेवाँ जड़े हुए।
मरने जीने से खारिज हो, तड़फें नित बिस्मल पड़े हुए॥१॥

कोई शक्ति रूप-सा कहते हैं, कोई निर्गुण बारह बानी का।
कोई काल, कर्म, गुण शून्य जीव, कर्त्ता पानी-से प्राणी का॥
फिर हंस सुपेद, हरे तोते, भोरों पर चित्र जहानी का।
चुप होकर चरण चूम लेना, कहना क्या अकथ कहानी का॥२॥

पूरणमासी के शरद चंद्र को, लखें सुधा-रस मत्ता सा।
मुख ते नक़ाब को खोल दिया, जगमगै प्रताप चकत्ता सा॥
मुसकान निकल कर खाय गई, चित सुधा लपेटा कत्ता सा।
भरि नजर न देख सुधाकर को, छुट परै छपाकर छत्ता सा॥३॥

श्रम सीकर लालबिहारी के, देखे उपमा में दंगल सा।
कुछ हीरे हरे हुए चित में, मोती के जी में मंगल सा॥
अलसाता हुआ नजर आया, अलबेला रूप अखंडल सा।
कै शरद चंद्र पर उदै हुआ, जानी तारागण मंडल सा॥४॥

मुख शरद चंद्र पर श्रम सीकर, जगमगे नखत गण जोती से।
कै दल गुलाब पर शबनम के, हैं कणिका रूप उदोती से॥
हीरे की कनियाँ मंद लगें, हैं सुधा किरण के गोती से।
आया है मदन आरती को, धर हेम थार पर मोती से॥५॥

मुख शरद चंद्र पर ठहर गया, जानी कें बुंद पसीने का।
या कुंदन कमल कली ऊपर, झमकाहट रक्खा मीने का॥
रहता है कोई होश कहीं, हो पिदर बूअली सीने का।
या लाल बदख्शां पर खैंचा, चौका इलमास नगीने का॥६॥

—आनंद चमन

हीरे से दशन, हँसन माणिक, बिद्रुम अधरों से अड़ते हैं।
मुख संपुट जड़ा जड़ाव लहर, चुन्नी के चौके जड़ते हैं।।
मुसक्यान बिहारी की सीतल, बेली के गुंचे गड़ते हैं।
लब लाल बदख्शां से जानी, हँसने में मोती झड़ते हैं।।१।।

नख चमकें ललित सितारे से, पहुँची लखि छवि से छाय गया।
दुति हीरेनुमा अँगूठी की, नग जी के बीच समाय गया।।
मिहँदी के रँगे हुए पोरे, दिलदार अचानक आय गया।
जानी का हाथ नजर आया, दिल हाथों हाथ बिकाय गया।।२।।

कुंदन माणिक से जड़ी हुई, यह रची बूअली सोने की।
नीलम माणिक पुखराज लगे, लहरें इलमास नगीने की।।
सुरपुर से सुरपति चाहै है, देखों मैं जाय प्रबीने की।
अलसाता हुआ नजर आया, है छड़ी हाथ में मीने की।।३।।

सूरज की किरणें उदै हुईं, आईं सब फेल दरीचे में।
गुल नौ बहार लहलहे हुए, जे प्रेम सुधा-रस सींचे में।।
सब्जे का रंग जवाहर सा, जब नजर पड़ गई नीचे में।
अलसाता हुआ नजर आया, जानी जग मगन बगीचे में।।४।।

तुझ तन सुगंध से घायल हो, केतकी केबड़े पट्ट हुए।
खारों के तेशे सोने पर, जड़ते गुलाब रंग घट्ट हुए।।
कचनार चंपई मृग मद से, घनसार अरगवां ठट्ट हुए।
बेहोश मद छके गुंजे हैं, जानी भौंरों के गट्ट हुए।।५।।

जिस दिन तू गली हमारी में, जानी भूले से पाय दिया।
मधु भरे मधुव्रत गुंज उठे, खुशबू से आँगन छाय दिया।।
कशमीर पानरी खस गुलगूं, मजमुआ अतर बरसाय दिया।
अब लग सुगंध नहिं जाती है, मानों गुलाब छिड़काय दिया।।५।।

—बिहार चमन

---

६. श्री सहचरिशरण

श्री सहचरिशरण का अन्य नाम सखीशरण भी था। उनका जन्म सं० १८३० में हुआ था। वे सं० १८४१ में टट्टी संस्थान के महंत श्री राधाशरण जी के शिष्य हुए थे। अपने गुरु के पश्चात् वे सं० १८७८ में टट्टी संस्थान के महंत बनाये गये। उनका देहावसान सं० १८६४ में हुआ था। उनके रचे हुए दो ग्रंथ 'ललित प्रकाश' और 'सरस मंजावली' प्रसिद्ध हैं।

'ललित प्रकाश' में स्वामी हरिदास जी से लेकर टट्टी-संस्थान के मंहत ललितमोहिनीदास जी तक के चरित्रों का कथन किया गया है। इसका आधार श्री किशोरदास कृत 'निज मत सिद्धांत' ग्रंथ है। इसके दो खंड हैं और इसकी रचना विविध छंदों में हुई है। इस ग्रंथ में निंबार्क संप्रदाय की महत्व-वृद्धि का पूर्ण प्रयास किया गया है। टट्टी संस्थान के महंत भगवानदास जी ने मथुरा निवासी श्री बनमालीलाल चतुर्वेदी द्वारा इसे प्रकाशित करा कर अमूल्य वितरित कराया था। इसके अंत में श्री सहचरिशरण जी के पश्चात् होने वाले टट्टी संस्थान के महंतों का भी उल्लेख किया गया है। इसे बाद में श्री रणछोड़दास ने लिखा था।

'सरस मंजावली' में १४० माँज या माँझ हैं। इसका काव्य-सौन्दर्य अनुपम है। इसमें सीतलदास जी की शैली का अनुकरण किया गया है। इसकी भाषा ब्रज मिश्रित खड़ी बोली है, जिसमें संस्कृत और फारसी शब्दों का प्रचुरता से प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं पर पंजाबी भाषा के शब्द भी मिलते हैं। इस ग्रंथ को श्री भगवतरसिक जी की वाणी के साथ टट्टी संस्थान ने ला० केदारनाथ द्वारा प्रकाशित कराया था।

श्री वियोगी हरि ने 'सरस मंजावली' की प्रशंसा में कहा है—

"इसकी रचना बड़ी उच्च कोटि की है। काव्य-चमत्कार के साथ ही इसमें प्रेम-माधुरी और रस-वारुणी की एक निराली ही छटा और मादकता है। इसकी भाषा भी अनूठे ढंग की है। .... कोई-कोई छंद तो 'तीर तलवार और तमंचा' का काम कर जाता है[1]।"

'सरस मंजावली' के कतिपय छंद उदाहरणार्थ प्रस्तुत हैं—

कटि किंकिणि सिर मोरमुकुट वर, उर बनमाल परी है।
करि मुसक्यानि चकाचोंधी, चित चितवन रंग भरी है॥
सहचरिशरण सु विश्व बिमोहिनि, मुरली अधर धरी है।
ललित त्रिभंगी सजल मेघ तनु, मूरति मंजु खरी है॥१॥

मुख मृदु मंजु महा खूबी, यह गर्व गुलाब हरोगे।
चश्म चारु नरगिस अलिमस्तां, उर संकोच भरोगे॥
छल्लेदार युगल जुलफें छवि, संबुल छैल छरोगे।
सहचरिशरण संग लै गुलसन, सैर शिताब करोगे॥२॥

चमन चारु छवि द्विज अनेक, जनु कटि किंकिणी धरोगे।
नैन कलीन विलोकन बाँकी, वचन प्रसून झरोगे॥
फल हजारहा इंतजार जहँ, अति अनुराग ढरोगे।
सहचरिशरण संग लै गुलसन, सैर शिताब करोगे॥३॥

अलकावृत मखतूल मूल छवि, ते भुज मूलन परसे।
बाँकी भौंह बिलोचन बाँके, रूप रंग रस बरसे॥
अधर बिंब बिंबित नकमोती, नित-नौती दुति दरसे।
सहचरिशरण पियूष भूख में, मुख-मयूख सुख सरसे॥४॥

●

1. ब्रज माधुरी सार, पृ० २४६

परिशिष्ट

१. हरिदासी संप्रदाय की प्रमुख गद्दियाँ

जैसा पहिले लिखा जा चुका है, स्वामी हरिदास जी की विरक्त परंपरा के अष्टाचार्यों में श्री ललितमोहिनीदास आठवें और अंतिम आचार्य थे। उनके गुरु श्री ललितकिशोरी दास जी के समय में जो 'टट्टी संस्थान' बना था, उसके प्रथम महंत श्री ललितमोहिनीदास जी बनाये गये थे। उनके द्वारा स्वामी जी की प्रमुख गद्दी के रूप में 'टट्टी संस्थान' की आचार्य-परंपरा प्रचलित हुई। ललितमोहिनीदास जी के उपरांत 'टट्टी-संस्थान' के जो आचार्य हुए, उनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

१. **श्री चतुरदास**—श्री ललितमोहिनीदास जी के पश्चात् श्री चतुरदास सं० १८५८ की भाद्रपद शु० ६ को 'टट्टी संस्थान' के आचार्य हुए थे। वे प्रायः एक वर्ष तक ही जीवित रहे। उनका देहावसान सं० १८५९ में हो गया।

२. **श्री ठाकुरदास**—श्री चतुरदास जी के पश्चात् श्री ठाकुरदास सं० १८५९ की माघ शु० ५ को आचार्य हुए थे। वे सं० १८६८ तक विद्यमान रहे। उनके शिष्यों में शीतलदास जी बड़े प्रतिभाशाली कवि हुए हैं। उनकी 'गुलजार-चमन' आदि रचनाएँ उत्तम काव्य कृतियाँ हैं।

३. **श्री राधाशरण**—श्री ठाकुरदास जी के पश्चात् श्री राधाशरण सं० १८६८ की ज्येष्ठ शु० ६ से सं० १८७८ तक आचार्य पद पर रहे थे। उन्होंने 'केलिमाल' पर 'वस्तुदर्शिनी' टीका तथा कुछ पदों की रचना की है।

४. **श्री सखीशरण** – उनका नाम सहचरिशरण भी था। वे राधाशरण जी के पश्चात् सं० १८७८ से १८६४ तक 'टट्टी संस्थान' के आचार्य थे। उनके विषय में पहिले लिखा जा चुका है।

५. **श्री राधाप्रसाद**—श्री सहचरिशरण जी के पश्चात् श्री राधाप्रसाद सं० १८६४ की ज्येष्ठ शु० ४ से सं० १६४४ तक 'टट्टी संस्थान' के आचार्य रहे थे।

६. **श्री भगवानदास**—श्री राधाप्रसाद जी के अनंतर श्री भगवानदास सं० १६४४ की आश्विन शु० १० को आचार्य हुए थे। उनका जन्म झांसी के निकटवर्ती गाँव में हुआ था। वे सनाढ्य ब्राह्मण थे। उन्होंने 'टट्टी संस्थान' की बहुत उन्नति की और अनेक हस्तलिखित ग्रंथों का प्रकाशन किया। उनका देहावसान सं० १६८७ की कार्तिक शु० ५ को हुआ था।

७. **श्री रणछोड़दास**—श्री भगवानदास जी के पश्चात् श्री रणछोड़दास सं० १६८७ से १६६० तक आचार्य रहे थे।

८. **श्री राधारमणदास**—श्री रणछोड़दास जी के पश्चात् श्री राधारमणदास सं० १६६० से १६६३ तक आचार्य रहे थे।

६. **श्री राधाचरणदास**—श्री राधारमणदास जी के पश्चात् श्री राधाचरणदास सं० १६६४ की आश्विन शु० १० को आचार्य हुए थे। वे 'टट्टी संस्थान' के वर्तमान महंत हैं। उन्होंने प्राचीन परंपरा की रक्षा करते हुए 'टट्टी संस्थान' की गौरव-वृद्धि का प्रयास किया है। स्वामी जी की भक्ति-भावना और संगीत-पद्धति को अक्षुण्ण रखने के लिए भी वे सचेष्ट हैं।

'टट्टी संस्थान' के अतिरिक्त ठाकुर श्री गोरेलाल जी और श्री रसिकबिहारी जी के मंदिरों की गद्दियाँ भी हरिदासी संप्रदाय के अंतर्गत हैं। यहाँ पर उक्त गद्दियों के आचार्यों का भी नामोल्लेख किया है। श्री रसिकदास जी के शिष्य श्री

गोविंददास से ठाकुर श्री गोरेलाल जी की परंपरा चली है। उनकी शिष्य-परंपरा में निम्न लिखित आचार्य हुए हैं—

१. श्री मथुरादास, २. श्री प्रेमदास, ३. श्री जयदेवदास, ४. श्री श्यामचरणदास, ५. श्री हरनामदास, ६. श्री गोपीवल्लभ, ७. श्री बलरामदास, ८. श्री गुलाबदास, ९. श्री हरिकृष्णदास, १०. श्री दामोदरदास, ११. श्री बालकदास (वर्तमान) ।

ठाकुर श्री रसिकबिहारी जी के मंदिर की आचार्य परंपरा श्री रसिकदास जी के शिष्य श्री पीतांबरदास से चली है। उनके स्थान की आचार्य-परंपरा निम्न लिखित है—

१. श्री हरिदेव, २. श्री गोवर्धनशरण, ३. श्री कृष्णशरण, ४. श्री नरोत्तमशरण, ५. श्री निंवार्कशरण, ६. श्री जगन्नाथ शरण, ७. श्री ललितशरण, ८. श्री गंगाशरण, ६. श्री लाड़िली-शरण, १०. श्री राधाशरण (वर्तमान)[१] ।

हरिदासी संप्रदाय के अंतर्गत गृहस्थ शिष्य – परंपरा श्री जगन्नाथ जी से प्रचलित हुई है। उनके वंशज श्री बाँकेबिहारी जी के सेवाधिकारी हैं और 'बिहारी जी के गोस्वामी' कहलाते हैं। जगन्नाथ जी के द्वितीय पुत्र मेघश्याम जी के वंश में बंशीधर जी, मुकुंददास जी, गोविंद जी, लाड़िली जी, जगदीश जो और नंदकिशोर जी तथा तृतीय पुत्र मुरारीदास जी के वंश में माधवदास जी, गोपालनाथ जी, रूपानंद जी, रसिकलाल जी, किशोरीलाल जी, रामचरण जी, अलिबेलीलाल जी, गणेशीलाल जी, दुर्गाप्रसाद जी आदि आचार्य हुए हैं[२] ।

---

१. श्री सर्वेश्वर का 'वृंदाबनांक', पृ० २९०

२. श्री स्वामी हरिदास अभिनंदन ग्रंथ, पृ० ९८–१०८

२. हरिदास डागुर की रचना

शंकर-वंदना— [१] राग श्री चौताल

सब सेवा करत हैं तैंतीसौ कोटि, महादेव तुव नाम जप-तप,
पार्वती-पति पतित-पावन पातक-हर तो गुनन सेस सुमरत ॥
त्रैलोकनाथ शंभु शंकर त्रिशूल धरै तपोमूर्ति त्रिपुरारी,
मानी महेस देस-देस के नरेस तोकों ध्यावत ।
जोई-जोई माँगत सोई-सोई पावत हैं,
'हरिदास डागुर' होत सुकृत ॥

ज्ञान-रूपक— [२] रागिनी टोड़ी, झपताल

ज्ञान मदमाते जे नर निसि-दिना, तिन्हकों कबहू न होत खुमारी ।
सत के प्याले भर-भर पीवत, रसना सवाद लेत–
ध्यान धरत, जाकों लागी रहत जिय तारी ॥
मन की रसायन, तन करी भाटी, पाँचों आत्मा अगिन जारी ।
'हरिदास डागुर' के प्रभु ध्यान धरत ही,
मानों स्वाँति बूंद डारी ॥

संगीत— [३] रागिनी पूर्वी तिताला

तान तुरंग, है सप्त सुर रंग जीन लगाम, सुद्ध अलापन ।
मूर्छना ग्राह ग्रह ताल तरल अद्भुत गत,
हय कलोल की घुमावन ॥
धारू धुरपद काव्य सज्जा ताल सवार, गज गमकनि डरावन ।
'हरिदास डागुर' उत्तम नायक जो गुन लहै,
गरवायें मान मनावन

संगीत-रूपक— [४] राग भैरव चौताल

तरैया नाद महानद कौ, मूर्छना गमक नीर सुरत अगाध,
तान तरंग ताल तरल, वही अलापन औड़व षाडव पूरन धार।
आरोही अवरोही दोऊ कुल पुर अंसन्यास–
ग्राह ग्रह तान भँवर, सरोज वादी विवादी सिवार॥
नौका आवाज पर राग रागिनी पथिक चढ़त–
उतारत गुनीजन बार पार।
'हरिदास डागुर' उत्तम नायक धारू धुरुपद छंद गुन बल्ली,
पत पतार संगीत गीत अधार॥

[५] रागिनी टोड़ी तित्ताला

तान तरवार तार की सिपर लियैं, फिरत गुनी जहाँ तहाँ,
जीते सुभट अपने अनुमान जहाँ तहाँ जीतत तुरत।
सुर कमान बोल बान छूटत, जेहि लागत रीझत,
तेही सभा जानें विद्याधर सब जुरत॥
सप्तक के तरकस उचरत, सुनत नेजा अस्मान बख्तर,
बाजू लय उपज नई पंख बाजू फुरत।
तहाँ सभा के बीच लरत 'हरिदास डागुर' ज्यों-ज्यों कहै त्यों-त्यों,
सुनौ सुघर सुज्ञान, अज्ञान आगै फौजें मुरत॥

[६] रागिनी पूर्वी चौताल

ऐसौ लियौ नाद गढ़ महाचंड, आरोही अवरोही–
अस्थायी संचारी, महा बिकट निपट अति आगत।
छहौ राग बुर्ज भए, तीसौ भार्या के कोट,
इकईस मूर्छना रंग बाईस, सुरत के कँगूरे तीय के नीके लागत॥

सप्त स्वर सप्त पौर, औडव षाडव के किवाड़,
तामें करताल चलत गोला ओला भयौ नाद जागत ।
धुरपद की चारों तुक चतुर दिसा में चुनौती दीनौ,
ऐसेई वाकौ कीनौ नयौ रंग जल भरि राखे कंठ–
गुनी के रिसाले लाल के गुन पागत ॥
'हरिदास डागुर' गुरुन गुरु ज्ञान कहै,
ऐसै जैसैं लरै-झगरै रच-पच अटूट टूट में रीझ देत,
हीरा-मोती रतन फल लागत ॥

नायिका— [७] रागिनी टोड़ी तिताला

भर-भर धर-धर आवत गागर, नागर नारि री !
कौन के रस मिस केरे ।
औरहि दिनन में एकहि बेर जावत पनियाँ भरन,
आज कैऊ बेर आई गई, ऐसै कहा भए नंद के हेरे ।
जो तू अब सास-नँनद की कान करैं, तौ पावै नाहिं गोकुल डेरे ।
'हरिदास डागुर' प्रभु के कहे तें, मेरे नैन-प्रान सब गये नेह घेरे ॥

[८] रागिनी टोड़ी देश सुर फाक्ता

आई नारि री ! तू कौन के रस बस मिस कर ।
और दिनन में एक ही बार तू, आवत जात ही पनियाँ भरन कों,
आज सो कैई बेर आई गई, ऐसै कहा भए हैं नंद मैहर ॥
जो तू सास–नँनद की कानन करत, आपन कौलहि कर ।
'हरिदास डागुर' तोहि बरजत, तू अब कहि भई है अति निडर ॥

नोट— ये आठों ध्रुपद 'संगीत राग कल्पद्रुम' में से संकलित किये हैं ।